द्वादशी

वाचस्पति पाठक

भारती-भण्डार, काशी
१९८९

द्वादशी

वाचस्पति पाठक
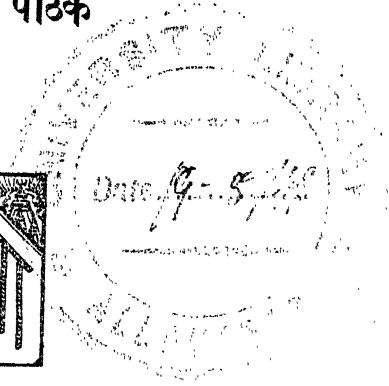
भारती-भण्डार, काशी
१९८९

ग्रन्थ संख्या २९

प्रकाशक

भारती-भण्डार

प्रथम संस्करण

मूल्य १।)

मुद्रक—

कृष्णाराम मेहता,

लीडर प्रेस, प्रयाग।

विद्या-विनोदी, प्रजा-प्रिय

माननीय राजा श्रीशारदा महेश प्रसाद सिंह
जी शाह

अगोरी-बड़हराधिपति

के

कर-कमलों

में

सादर समर्पित

—लेखक ।

अनुक्रम

भूमिका

'द्वादशी' के लेखक श्रीयुत वाचस्पति पाठक जी मित्र से भी अधिक हमारे आत्मीय हैं, इसलिए इस छोटी-सी भूमिका का व्यक्तिगत हो जाना एक प्रकार से अनिवार्य हो गया है। पाठक जी साहित्य के काम को बड़ी सुस्ती की नज़र से देखते हैं और कभी ही कभी कुछ लिखकर तबियत बहलाते हैं। इसका नतीजा जहाँ एक ओर यह हुआ है कि वे अपनी श्रेणी के अधिकांश नवयुवकों से परिमाण में कम लिख सके हैं और भाषाव्याकरण को चुस्तदुरुस्त करने में भी माथापच्ची नहीं की है वहाँ भर्ती की कोई चीज़ आपकी लेखनी से नहीं निकली। जान बूझ कर वैसा करना तो आपके लिये असंभव ही है। यदि निर्द्वन्द्व भाव से, सूक्ष्म दृष्टि से जीवन का निरीक्षण करना उपयोगी है तो पाठक जी को इसका श्रेय प्राप्त है, और उन्हें यह श्रेय भी प्राप्त है कि उन्होंने उस निरीक्षण का उपयोग अपनी कहानियों में किया है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ सामाजिक रूढ़ियों के फोटोग्राफ नहीं, स्वरचित चित्र हुई हैं। पाठक जी के स्वभाव के अनुकूल ही उनकी रचनाओं में कथानक की नहीं, कथापात्रों की प्रमुखता है—कितने ही पात्र अपनी सजीव, स्पष्ट आकृति के कारण भुलाए नहीं जा सकते। निर्दोष भावभंगियाँ अंकित करने में आप को अच्छा कमाल हासिल है।

अन्य कहानियों की अपेक्षा हमें 'हेर-फेर' और 'जागरण' अधिक पसन्द आईं। 'हेर-फेर' में कहानी के विषय के अनुकूल बड़ा ही स्वाभाविक वातावरण तैयार किया गया है और पूरी कहानी घटना प्रधान न होती हुई भी विशेष गतिशील बन गई है। यह कला हिन्दी में कम देख पड़ती है। 'जागरण' पूर्णतः संकेत की कहानी है। पत्थर की तरह जड़ वासनाओं को पार कर अन्त में चैतन्य-ज्योति खिलती है। कहानी का विकास बड़ा ही मार्मिक हुआ है। ये दोनों हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में स्थान पाने के योग्य हैं।

हम विश्वास करते हैं कि सामयिक कथा-क्षेत्र में 'द्वादशी' भी अपने नाम के अनुकूल ही शोभाशालिनी होकर छिटकेगी।

नन्ददुलारे बाजपेयी,
(सम्पादक 'भारत')।

द्वादशी

रानी

जब वह छोटी बच्ची थी तभी मालिकिन बहू ने उसका नाम रक्खा था रानी। उसके कृश शरीर में सभी अवयव केवल अपने क्षीण अस्तित्व का परिचय दे रहे थे। अपने छोटे से बिछौने पर इस काली-कुरूप लड़की को देख कर उसकी माँ कह उठती—भला मालिकिन बहू ने इसका नाम रक्खा है रानी!—उसे बड़ा आश्चर्य मालूम पड़ता। उसकी प्रेममय विरक्ति गर्वित हो जाती।

रानी की माँ मजदूरनी थी, मासिक तो तीन रुपये ही मिलते थे पर उसका निर्वाह यहाँ भली-भाँति हो जाता था। यह मालिकिन बहू के पीहर से आई थी इससे इसका सभी खयाल करते।

रानी इसी घर में पल रही थी, उसका हड्डियों में हँसता हुआ बाल्यकाल सभी के प्रमोद की सामग्री थी परन्तु मनोहर बाबू के बच्चे—किशोर का खेल तो उसके बिना अधूरा रहता, होता ही नहीं था। इस परिवार में वही किशोर की संगिनी थी, अबोध किशोर के पंचवय जीवन की अस्पष्ट, सारहीन किंतु हृदयस्पर्शिनी, वह मानों तुतली भाषा थी—सच्चे हृदय से दुःख में दुखी, सुख में सुखी रहने वाली रात दिन की साथिन थी। यदि यह कुरूपा बालिका रानी सूर्यमुखी थी तो किशोर सूर्य था। वह उसी का मुँह देखा करती। दोनों बच्चों का प्रेम सरल तथा अटूट था।

किशोर जब रात्रि में सोने जाता तो रानी कहानी कहने बैठती। रानी कहती—एक राजा थे। उसे एक कौवा-हँकनी रानी थी।

किशोर हँस कर पूछता—कौवा-हँकनी रानी थी? रानी कौवा-हँकनी !! क्यों रानी ?

नहीं, नहीं—उस राजा के दो रानियाँ थीं, एक से राजा नाराज होकर कौवा उड़वाते थे। वही कौवा-हँकनी रानी कह-लाती थी—बालिका चकपका कर अबोध धार्मिकों की नाईं दृढ़ स्वर में कहानी का उपक्रम मिला कर फिर कहने लगती।

किशोर चतुर तार्किकों की भाँति बीच ही में गम्भीर होकर प्रश्न करता—कौवा-हँकनी रानी इसके लिए राजा से कभी बिनती न करती—? क्या उसे यह बुरा न लगता था।

रानी और बिनती करती?—जैसे उस बालिका को यह असह्य मालूम पड़ता। वह ऊब कर कहती—जाओ तुम कहानी

न सुनोगे ? मैं भी सोने जाती हूँ !—वह रूठकर उठने का उपक्रम करने लगती ।

किशोर चतुर राजनीतिज्ञों की तरह अवसर पर सन्धि कर लेता, चुपचाप कहानी सुनता । सो जाता । इसी तरह दिन-रात बीत रहे थे । समय अपना काम करता बढ़ता जाता था ।

रानी की माँ असमय ही इहलोक से पयान कर गई । आकांक्षाओं से भरी तरी काल के एक ही लहर से उलट पड़ी । मरते समय उसने मालिकिन बहू को बुला कर बड़े कष्ट से इतना कहा—बहिन ! अब इस अभागिन रानी की रक्षा तुम्हारे ही हाथ है और इस दुनिया में ऐसा मेरा कौन है जिसे इसका हाथ पकड़ा जाऊँ ? इसे तुम्हारा ही आश्रय है ।—कहते-कहते उसका गला भर आया, बेचारी मृत्यु के समीप पहुँच चुकी थी, एक बार लड़खड़ाते हुए शब्दों में उसने फिर कहा—लड़का होता तो कहीं इधर-उधर माँग-जाँच कर पेट भर लेता पर यह क्या करेगी ? उसकी बोली बन्द होने लगी । लड़की के स्नेह ने जैसे उसके प्राण दबा रखे हों । वह किशोर की माँ की ओर याचना की एक दृष्टि डाल कर बोली—तुम्हें क्या समझाऊँ ? तुम्हीं इस अनाथिनी की सर्वस्व हो । ऐसा करना, जिससे इसका निर्वाह होजाय—विधवा की आँखें आँसू गिराने लगीं, उसका शरीर शिथिल पड़ गया, मुँह पीला हो चला ।

किशोर की माँ किंकर्त्तव्य-विमूढ़ की नाईं अभी तक खड़ी थीं, उन्हें जैसे कुछ सूझता ही नहीं था । उनके समीप ही रानी

प्रतिमा-सदृश खड़ी सूनी आँखों से यह दृश्य देख रही थी, मानों उसका अनियंत्रित मन सघन अनिश्चित तम में डूब रहा हो। सरला—किशोर की माँ—का हृदय उमड़ आया, उसने उसे खींच कर अपनी छाती से चिपटा लिया और बड़े करुणस्वर में बोलीं—डर मत बेटी!—मैं तो तेरी माँ हूँ ही। तू घबड़ाती क्यों है? आगे उससे कुछ कहा न गया, रानी सिसकने लगी थी।

रानी की माँ के प्राण मानों इन्हीं बचनों को सुनने के लिये रुके थे, वे अब अपने गन्तव्य स्थल को विदा हो गये। सरला से वहाँ रुका न गया—वह बाहर निकल आई। वहाँ रानी को एक दूसरी दासी के सुपुर्द कर दिया और आप अपने कमरे में जा बिस्तरे में पड़ रही। आज उसके हृदय को मृत्यु का पहला आघात लगा था। उसकी समस्त करुणा फूट पड़ी थी, वह रो पड़ी।

किशोर ने ऐसा विप्लव कभी न देखा था। उसकी समझ में न आता था कि वह क्या करे? सामने रानी रो रही थी, जैसे जबर्दस्ती कोई सारी सम्पत्ति लुटा रहा हो, और वह कुछ न बोल सके। सभी उद्विग्न थे। सात वर्ष का बालक अपनी करुणा में डूबने उतराने लगा। बेचारा रानी को कुछ भी सान्त्वना न दे सका; धीरे-धीरे अपनी माँ के कमरे की ओर चला गया। ऐसे अवसर पर माँ की शान्तिदायिनी गोद से बढ़ कर दूसरी विश्राम की जगह नहीं, जहाँ अपना धैर्य आश्वासन पा सके!

किशोर ने माँ को पलँग पर चादर ओढ़े पड़ी पाया, पास ही बैठ कर वह उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगा। सरला ने चादर उठा कर देखा, किशोर उदास मुँह बैठा है। उसकी चेतनाहीन करुणा एक बार तलमला उठी। अपने

किशोर की उदासी के कारण वह जैसे सचेत हो गयी हो,—उसे खींच अपनी छाती में जोरों से चिमटा लिया।

किशोर ने कहा—माँ आज रानी बहुत रोती है। तुम उसे चुप न करा दोगी ?—किशोर उसके दुःख से विकल था।

सरला ने कहा—तुम अभी मेरे ही पास सो रहो, फिर मैं कुछ करूँगी बेटा! अभी मेरी तबीयत ठीक नहीं है।—किशोर चुपचाप आँखें मूँद कर जैसे डर के मारे सो रहा। आज अनाथिनी रानी ने सभी को अपने दुख में स्नेह-कातर बना दिया है।

मनोहर बाबू अपने जिले के मशहूर रईस हैं। सिविल लाइन में उनका दिव्य प्रासाद, मनोहर बगीचे के बीच शोभित है। वह सब तरह से सुखी हैं। श्री-सुयश-सम्पन्न, स्त्री-पुत्र सभी उनके अनुकूल, अब और वे इस जीवन में क्या चाहते? रानी की माँ जब से मरी तब से वे उससे उसके दुःख-सुख के बारे में कभी-कभी पूछ लिया करते, पर वह उस पर किसी तरह का अपना शासन नहीं रखना चाहते थे।

रानी किशोर के संग रहती और उसी का कुछ छोटा-मोटा काम कर दिया करती। यही उसके लिये यथेष्ट भी था। किशोर के संसर्ग से उसे हिन्दी पढ़ना-लिखना मजे में आगया था—वह अब अंग्रेजी का अक्षरारम्भ भी कर चुकी थी। इस पढ़ाने में किशोर भी विशेष आनन्द का अनुभव करता। रानी भी पढ़ने में मुदित-मन रहती।

किशोर बड़ा भावुक लड़का था। मनोहर बाबू उसे पढ़ाने का उचित ध्यान रखते। स्कूल के अतिरिक्त घर पर भी एक प्राइवेट ट्यूटर उसे पढ़ाने आता तथा एक संगीत शिक्षक भी उसे एक घन्टे गान-वाद्य की शिक्षा देता था। रानी का गला रसीला देख कर शिक्षक महोदय उसे गाने में साथ ले लिया करते थे; कहना न होगा कि किशोर ही की इसमें विशेष उत्कंठा थी।

रानी यद्यपि कुछ खिंच कर गाती थी तथापि उसका गाना सुनने वालों को बड़ा सरस मालूम पड़ता था। एक बार स्वयं मनोहर बाबू उसका गाना सुन कर चकित हो गये थे। मास्टर से उस समय उन्होंने कहा—यह लड़की अच्छा गा लेती है। इसका गला भी मधुर है।—रानी को लज्जित होते देख उन्होंने हँसते हुए कहा—क्योंरी! तूने मुझे अपना गाना कभी नहीं सुनाया, अच्छा अब सुनाया करना भला!

किशोर बीच में बोल उठा—बाबू जी यह मजे में किताबें पढ़ लेती है। किसी दिन पढ़वा कर सुनिये तो।—किशोर गर्व से उत्फुल्ल था।

अच्छा सुनूँगा—कहते हुए मनोहर बाबू चले गये।

इन्हीं परिस्थितियों में रानी का जीवन बीत रहा था। दयावती सरला के समीप उसे अपनी माँ की याद भूली जा रही थी। सरला का स्नेह उसे स्निग्ध किये रहता था। दोपहर के खाली समय में वह इससे अच्छे उपन्यास पढ़वा कर सुनती। सरला स्वयं भी व्युत्पन्न थी। एक दिन रानी, बंकिम बाबू का 'कृष्णकान्त का बिल' का अनुवाद पढ़ कर सुना रही थी—भ्रमर से गोविन्द लाल का, वह 'भ्रमर, भौंर, भोमर, भोम........काला चाँद,

काला सोना, काला माणिक, कालिन्दी इत्यादि नित्य नये-नये स्नेह से भरे हुए सुखपूर्ण प्रिय सम्बोधन नहीं, बिना काम का अब पुकारना नहीं—उसका कलेजा भर आया। उसने सरला से कहा—माँ अब आज यहीं तक रहने दूँ ?—सरला बैठी मोजा बुन रही थी, उसने ध्यान बटा कर देखा, लड़की की आँखें भर आई हैं। उसने कहा—क्यों, पढ़ती क्यों नहीं, प्रसङ्ग तो अच्छा मालूम पड़ता है।

अच्छा पढ़ती हूँ, माँ।—किताब खोलते हुए रानी ने कहा।

सरला ने देखा, रानी अन्यमनस्क भाव से पढ़ने की चेष्टा कर रही है। तब वे बोलीं—तबीयत नहीं लगती है तो जाने दे; मैं भी तो अब उठूँगी।

रानी कुछ लज्जित होकर कहने लगी—नहीं यों ही कह दिया था माँ, यह कहानी बड़ी सुन्दर है सुनो न।

इतने में मनोहर बाबू कचहरी से आ गये।—देखो वह आ गये, मैं अब बैठके में जाती हूँ।—कह कर सरला उठ खड़ी हुई।

रानी भी किशोर के कमरे में जाकर अव्यवस्थित पुस्तकों को यथाक्रम रखने लगी।

मनोहर बाबू के जलपान का सामान लेकर जब सरला उनके कमरे में आई, उस समय वह एक कुरसी पर बैठे सामने के शीशे में अपना रूप निहार रहे थे। सामान एक छोटे से टेबल पर रख कर सरला ने टेबल उनके सामने कर दिया और बोली—

लो जलपान कर लो—फिर उनके सामने ही एक कुरसी खींच कर बैठ गई।

मनोहर बाबू जलपान करते-करते बोले—अभी तुम क्या कर रही थीं ?

योंही बैठ कर किशोर के लिए एक मोजा बुन रही थी और रानी से एक उपन्यास पढ़वा रही थी। वह मजे में किताबें पढ़ लेती है। है भी बड़े अच्छे स्वभाव की।—सरला ने हार्दिक सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—अब वह बड़ी हो चली ; उसके लिए किसी अच्छे लड़के की तजवीज करनी चाहिए।—वह अपनी बातों का प्रभाव देखने के लिए चुप होकर मनोहर बाबू के मुँह की ओर देखने लगी थी।

मनोहर बाबू बोले—मैं स्वयं भी कुछ दिनों से यही सोच रहा हूँ। और किसी अच्छे लड़के की खोज में भी हूँ। फिर कुछ चुप रह कर बोले—एक लड़का मेरी निगाह में है भी। वह मिडिल पास करके यहीं कहीं, प्राइमरी स्कूल में मास्टर हो गया है। तुम कहो तो उसीसे शादी की बातचीत करूँ।

सरला ने कहा—मिडिल पास और मास्टर होना, यही जानते हो, या यह भी मालूम है कि उसके घर और कोई उसका सगा वगैरह है। कुछ आमदनी का जरिया और भी है या नहीं ?

मनोहर बाबू बात काट कर बोल उठे—मैं सभी बातें समझ-बूझ कर कह रहा हूँ। उसके लिए इससे उपयुक्त दूसरा घर-वर मिलना कठिन है।

सरला ने प्रसन्न होकर कहा—यदि तुम उसे अच्छा समझते

हो, तो यही मेरे सन्तोष के लिए काफी है। मैं फिर क्या पूछना चाहूँगी ?

मनोहर बाबू ने कहा—लड़का सुन्दर, शीलवान और सच्चरित्र मालूम होता है। उसका बाप यहीं स्टेशन में नौकर है, उसकी स्त्री कुछ दिन हुए मर गई। बुड्ढा बेचारा भला आदमी है। बुड्ढे के पास कुछ रुपया जरूर होगा। न होगा, तो उस लड़के को मास्टरी से छुड़ा कर कहीं यहीं एक दुकान करवा देंगे। सौ-पचास की मदद क्या तुम न कर दोगी ? ईश्वर चाहेगा तो अपनी छोटी-सी गृहस्थी में रानी सुख से रहेगी और अपने यहाँ भी आ-जा सकेगी। इन्हीं सब बातों को सोच-समझ कर मैंने इसे अच्छा समझा है।

सरला ध्यान लगाकर सब बातें सुन रही थी। बात समाप्त होने पर बोली—ठीक है। ऐसा हो तो बड़ा अच्छा होगा। मैं तो यही चाहती हूँ कि गरीब की बेटी है जरा सुख से रहे।

मनोहर बाबू के लिए यह काम कोई मुश्किल नहीं था। उन्होंने उसके दूसरे ही दिन बुड्ढे को बुला कर रानी की शादी उस लड़के से ठीक कर ली। सरला ने बड़े हर्षोत्साह के साथ उसके विवाह की तैयारी की; मानो यह उसी की लड़की की शादी हो। मनोहर बाबू की तरफ से भी कोई कमी न थी। यथा अवसर सभी कार्य होने लगे। ठीक समय पर रानी के कन्यादान का आयोजन होने लगा, मनोहर बाबू स्वयं इस कृत्य के लिये तैयार थे।

मंडप में किशोर खड़ा यह सब, कौतुक की तरह देख रहा था। उसके बाल्य-बन्धु कैलास ने—उसे चुप-चाप खड़े देख कर अपनी ओर खींचते हुए कहा—क्या देख रहे हो किशोर ?

किशोर ने अपनी मीठी हँसी बिखेरते हुए कहा—कुछ विशेष तो नहीं। मैं भी तो वही देख रहा था जो कि यह हरिश-कलश, गौरी-गणेश, मेरे घर की दीवारें तथा आकाश के तारे चुपचाप इस क्षुद्र दीपक के प्रकाश में देखने का प्रयत्न कर रहे हैं। तुम्हें मेरा ही देखना क्यों आश्चर्य मालूम पड़ा कैलास ? क्या मेरे लिये यह देखना पाप है ? यदि ऐसा हो तो चलो, मैं भी सोने जाऊँगा, मुझे नींद आ रही है।—किशोर की भावुकता ने उसे गीला बना दिया।

कैलास अपनी बात के उत्तर में इतना बड़ा व्याख्यान सुनकर चकित रह गया। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल हँसते हुए बाहर चला आया।

शादी हो जाने पर लड़के के बाप ने बहुत चाहा कि लड़की को तुरन्त बिदा करा ले चलें, पर सरला ने कहा—यह नहीं, जैसे विवाह किया है उसी तरह गौना देंगे। हम अभी बिदा नहीं कर सकते।—मनोहर बाबू ने सबको समझा-बुझा कर बिदा कर दिया। सभी प्रसन्न थे।

शादी के तीन चार दिन बाद एक दिन किशोर अपने कमरे में बैठा ड्राइंग खींच रहा था। रानी भी वहीं बैठी कुछ पढ़ रही थी। किशोर ने एक बार सिर उठा कर रानी की ओर देखा। बोला—क्यों जी ! तुम्हारा विवाह हुआ है। तुमने मुझे कुछ दिया

भी नहीं, खिलाया भी नहीं ? कम से कम तुम्हें मुझको इस तरह नहीं भूल जाना चाहिये था ।—वह अपनी हँसी दबाये हुए था।

रानी ने कहा—मैं तुम्हें क्या दे सकती हूँ और क्या खिला सकती हूँ किशोर ! वह आगे कुछ न कह सकी। अपने उत्तर से मानो वह स्वयं लज्जित हो गई थी।

तुमने ऐसा रूखा उत्तर तो कभी नहीं दिया था रानी !

धीरे से किशोर ने कहा।

वह कुछ न बोली। चुप-चाप बैठी रही। फिर उठकर चलदी। उसका मन लज्जा से गड़ा जा रहा था। आज उसने अपने से किशोर को बहुत दूर पाया। इसी का दुःख मानों उसके मन में खेल रहा था।

किशोर ने देखा रानी चली गई। वह अनायास ही हँस पड़ा।

दुर्भाग्य क्या लेकर आयेगा और क्या कर जायगा, इसे कोई नहीं जानता। रानी का ब्याह हुए आज आठ महीने ही बीते हैं। मनोहर बाबू रात में ब्यालू करके सोने की तैयारी कर रहे थे कि नौकर ने खबर दी कि रानी का ससुर रोता हुआ आया है और आप से मिलना चाहता है। मनोहर बाबू घबराये हुए बाहर निकले, तो देखा बुड्ढे का रोते-रोते गला बैठ गया है। उसकी हालत बुरी जान पड़ी। बात करने पर उसने जो कुछ बतलाया उसका निष्कर्ष यही था कि—आज शाम को चार-पाँच गोरे शराब के नशे में मस्त होकर प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। उसी

समय उधर से दुर्गा—रानी का पति—आया। उससे उन सबों ने कुछ छेड़-छाड़ की। बात बढ़ गई। अंत में मार-पीट की नौबत आ गई। दुर्गा अकेला था। उसे उन सबों ने खूब मारा और मार कर चले गये। वह वहीं बेहोश पड़ा रहा। कुलियों के बतलाने पर स्टेशन मास्टर और पुलिस के दारोगा एक मोटर में बिठा कर उसे अस्पताल ले गये हैं। कुलियों का कहना है कि वह बचेगा नहीं। मरा समझ कर ही वे सब उसे छोड़ भागे हैं।

मनोहर बाबू तुरन्त अस्पताल जाने के लिए तैयार हो गये। जाते समय सरला ने कहा—जो बात हो, जल्दी खबर देना। किशोर भी संग जा रहा था। उसने कहा—माँ मैं अभी आकर खबर दूँगा, घबड़ाना मत।

पर जो होना था, वही हुआ। अभागिनी रानी विधवा हो गई। सभी बातों का ख्याल करके मनोहर बाबू ने किसी तरह का मुकदमा चलाना अच्छा नहीं समझा। डाक्टर की राय, ऐसी ही थी कि कुछ सुनवाई न होती। अकेला बुड्ढा बेचारा क्या कर सकता था। मनोहर बाबू के समझाने से वह भी यही उचित समझ, आह भर कर रह गया।

और रानी के लिए क्या कहें? उसने इस दुःख को कहाँ तक अपनाया, वही जाने। देखने वाले तो कुछ न समझ सके। दरिद्रा के आँसू हृदय में ही कदाचित सूख गये थे।

उस दिन चाँदनी आकाश से बिछली पड़ती थी, लहरों पर दौड़ रही थी, फूलों पर हँस रही थी। सारा संसार एक कुहुक

बना था। मनोहर बाबू की वाटिका वसन्त की नव विभावरी की छाया में फूल उठी थी। उसी में चिन्ताशील किशोर न जाने टहल कर क्या देख रहा था? रानी सामने आकर खड़ी हो गई। किशोर ने उस चाँदनी में देखा—उसका रूप भरे हुए प्याले की तरह छलक रहा है और न जाने किस अभाव का सात्विक विषाद उसके जीवन में समा गया है।

आज बड़ी अच्छी रात है। रानी ने एक तरफ देखते हुए कहा।

किशोर कुछ न कह कर केवल रानी को देख रहा था; उसने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

रानी ने फिर पूछा—क्या सोच रहे हो जी?

किशोर ने कहा—मैं क्या सोचूँ, तुम्हीं बतलाओ?

रानी हँस पड़ी। कहने लगी—मैं क्या बतलाऊँ, कि तुम यह सोचो? बड़े भले-मानुस हो।—फिर मुसकराते हुए बोली—तुम्हारी शादी के लिए बहुत से लोग आते और लौट जाते हैं। तुम्हारे, शादी न करने से माँ को अत्यन्त कष्ट है। आज वह बाबू जी से कहती थीं कि तुम्हें डाट-डपट कर शादी करदें। भला तुम शादी क्यों नहीं करते? बोलो—।

युवती रानी, बालिका की तरह पूंछ रही थी!

किशोर ने जैसे सचेत होकर पूछा—क्या बतलाऊँ रानी?

रानी ने कहा—तुम शादी क्यों नहीं करते, यही बतलाओ।

मैं किसी रानी के साथ ब्याह करना चाहता हूँ, यदि ऐसा हो तो तैयार हो जाऊँगा रानी!—किशोर ने दूसरी तरफ सुदूर आकाश की ओर देखते हुए कहा।

रानी को जैसे काठ मार गया। उसने अपने को सँभालते हुए कहा—तुम्हारी यह हँसी मेरे लिए विष हो जायगी, जानते हो ?--उसकी मर्मव्यथा आँखों में उतर आई।

किशोर सहम कर बोला—तुम्हें कष्ट न हो, इसीलिए तो मैं कुछ कहता नहीं। सभी को शादी करना आवश्यक नहीं है, यही जान लेना तुम्हारे लिए बहुत है।

रानी जैसे भय विह्वल होकर पूछने लगी—मुझे कष्ट न हो ! तुम क्या चाहते हो किशोर ? मैं विधवा हूँ, तुम्हारी आश्रिता हूँ। बोलो तुम क्या चाहते हो ?—उसके स्वर में स्त्री का आत्माभिमान फूट कर बह रहा था।

किशोर घूम पड़ा; उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। उसने कहा—तुमसे अब मैं क्या कहूँ ? मैंने अपने हृदय की सारी दुनिया तुम्हारे प्रेम की आग में जला रक्खी है। तुम इसे न जान कर भी एक बार जान लो। यदि तुम्हारी आशा भी मेरे लिए मृगतृष्णा होगी तो निश्चय इस मरुभूमि में मेरा विनाश होगा।

रानी आगे कुछ न सुन सकी। मूर्छित होकर गिरने लगी। किशोर ने बढ़ कर उसे सहारा दिया। अपनी चेतनावस्था में किशोर को देख कर रानी काँपने लगी। बड़ी प्रार्थनापूर्ण वाणी में उसने कहा—देखो तुम लड़के नहीं हो किशोर ! जो तुम्हें कुछ समझाने की आवश्यकता हो। मेरी रक्षा तुम्हारे हाथ है। एक विधवा का अपमान करके तुम्हें क्या मिलेगा ? मैं विशेष क्या कहूँ।—इसके आगे वह कुछ कह न सकी; उठ खड़ी हुई और फिर बँगले की ओर चली गई।

किशोर वहीं बैठा रहा।

आज मनोहर बाबू का परिवार नाटक देखने गया था, रानी सरन्दर्द का बहाना करके नहीं गई। उसे जैसे अपने से अरुचि हो गई थी। मनमारे विस्तरे पर पड़ी वह छत की कड़ियाँ गिन रही थी। फिर न जाने उसके मन में क्या आया एकाएक उठी और लालटेन तेजकर एक पत्र लिखने लगी।

प्रिय ....,

आज तुम्हें यह पत्र लिख कर सूचना दिये जाती हूँ कि मैं अब यहाँ तुम्हारे घर में न रह सकूँगी। बाहर जा रही हूँ। आशा है मेरी इस धृष्टता को आप लोग क्षमा कर देंगे। मैं जानती हूँ, मेरे यों जाने के कारण मेरे सम्बन्ध में नाना प्रकार के अपवाद फैल जायँगे, पर इससे क्या? वह अपमान मुझे विचलित न कर सकेगा। मुझे यहाँ से जाने में ही सुख है। पर तुमसे मेरा एक अनुरोध है, आशा करती हूँ अभागी विधवा की इस प्रार्थना को निष्फल न जाने दोगे! तुम अपनी शादी अवश्य कर लेना, अन्यथा माँ को अत्यन्त कष्ट होगा। मेरी भी एक अन्तिम लालसा है और वह तुम्हारे शादी करने ही से पूर्ण हो सकती है। वह है तुम्हारे लड़के को खेलाने की। इसे तुम हँसी में न टाल देना, अन्यथा मेरी स्मृति तुम्हारे क्षुब्ध हृदय में दौड़ा करेगी। तुम भी सुखी होगे, शादी कर लेना। मेरी खोज करना भी व्यर्थ होगा। मैं कहाँ जाऊँगी, स्वयं नहीं जानती। हाँ यदि शादी कर लोगे, तो अवश्य एक बार तुम्हारी पत्नी के चरणों में आश्रय खोजूँगी।

तुम्हारी

अभागनी रानी।

पत्र लिख चुकने पर उसने उसे एक बार, पढ़ा । पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू आगये । उसे वह किशोर के बिस्तरे पर रख आई । बगीचे में आकर उसने एक बार उस घर की ओर देखा । फिर बाहर निकल आई और उन्मादिनी-सी एक ओर को बढ़ती चली गई ।

उधर रंगमंच पर किशोर भीष्म की प्रतिज्ञा सुन रहा था ।

अभिभावक

अपरिचित देश के इस नवीन वासस्थान में शरद् ऋतु का अलसमध्यान्ह; मेरे हृदय के अनिश्चित विषाद सा शून्य था। जिसे संसार में कोई काम नहीं—वह कैसे जीता है ?—विषयशून्य हृदय में यह अचिन्तनीय चिन्ता व्याप्त हुई—अजगर भी जीव है, बेचारा विशालकाय शरीर का स्वामी ! तमाच्छादित गहन गिरिसंकुल में उसका निस्पृह निरवलम्ब जीवन कितना वेदनापूर्ण होगा ?—करुणार्द्र-हृदय व्याकुल हो उठा।

मैं भूल गया था—हम मनुष्य-सृष्टि की सर्वाङ्गपूर्ण रचना हैं; बुद्धि विशेष ही हमारा अमूल्य साधन है। हम अजगर नहीं, निष्काम नहीं, हमारी शक्ति संसार पर शासन करती है।—स्मृति ने

विनीत स्वरों में सभी दुहरा डाला। मेरा अहङ्कार बाल लहरियों-सा शून्य हृदय में नचाने लगा।

भाव-विभोर मनुष्य अपने को भूल जाता है। मैं भी आँखें मूँदे चुपचाप पड़ा था। सहसा किसी बालक के रोने का शब्द सम्पूर्ण निस्तब्धता को भंग कर मुझे चैतन्य कर गया। मैंने वातायन से बाहर की ओर देखा। सामने के मकान की दालान में एक बालक रो रहा है और उसका क्रोध से पागल पिता उसे मार-मार कर कह रहा था :—

अबे जल्दी से 'तालाब' की अंग्रेजी बता! नहीं तो मारते-मारते बेदम कर दूँगा। उसके हाथ का बेंत उस बालक के हृदय की भाँति काँप रहा था।

मेरा सम्पूर्ण आनन्द सिमिट कर उसके आस-पास खड़े लड़कों सा स्तब्ध रह गया। चुपचाप लेटे-लेटे मैं उस निर्मम पिता को देखने लगा।

बालक मार पड़ने के डर से और अधिक रोने लगा था।

तू नकल ही साधेगा—बदमाश, पाजी, गधा कहीं का? मैं अभी तुझे ठीक किये देता हूँ।—कहकर उस पिता ने बालक के कोमल गालों पर दो चपतें जड़ दीं।

मार पर मार पड़ने से बालक क्षुब्ध हो गया। उसने बड़े विनीत स्वर में कहा—थोड़ी देर में याद कर मैं सब आपको सुना दूगा, मान जाइये बाबूजी।—बालक की साँस फूलने लगी थी। उसने मौन होकर आज्ञा चाही।

मैं तुझे खूब ही जानता हूं। बातों में बहलाता है।—हाथ छोड़ते हुए उसके पिता ने कहा।

बालक ने फूट फूट कर रोते हुए अपनी वह याचना बार बार सुनाई; पर क्रोधातुर पिता ने अपना हठ न छोड़ा। पुत्र की बातों पर उसे पूरा अविश्वास था।—सोच कर अभी कह! नहीं तो बचा छोड़ूँगा नहीं—प्रतिज्ञा की तरह उसने अपने लड़के से कहा।

इस उपद्रव में जो दो-चार पड़ोसी एकत्रित हो गये थे, उन्होंने साहस करके कहा—जाने दो, डाक्टर बाबू, अभी लड़का है, याद कर सुना देगा।

ये डाक्टर है? मेरे हृदय ने सोच कर सन्तोष पाया। कदाचित् उसे यह विश्वास हुआ; कि डाक्टर होने से ये शिक्षित और समझदार होंगे। अतः अब इस पर दया करेंगे। क्षण भर के लिये डाक्टर से मुझे भी सहानुभूति हो गई।

डाक्टर ने बड़ी रोष-पूर्ण दृष्टि प्रार्थियों पर डालकर कुसुम-से कोमल अपने उस बच्चे से कहा—आज कुछ नहीं मनूँगा, तुझे मारते-मारते मार ही डालूँगा। भले ही इसके लिये मुझे फाँसी लग जाय। तू जीकर क्या करेगा नालायक!—वे क्रोध से काँप रहे थे।

विवेचना पूर्ण उनका यह निर्णय सुनकर मैं इस अवस्था में भी हँस ही पड़ा। अपराध की गुरुता मैं समझ न सकता था।

आये हुये एक-एक कर सभी वहाँ से हटने लगे। निर्दय डाक्टर सदय न होगा—यह विचार लोगों में दृढ़ हो गया।

आध घन्टे तक और खड़े रह कर डाक्टर ने शायद प्रतीक्षा की; कि यह प्रश्न का उत्तर देकर मुझे इस निष्ठुर व्यापार का फल दे देगा। पर वह न हुआ। तब उसने निराश होकर बालक को चबूतरे के नीचे ढकेल दिया और—इस घर में अगर तू पैर

देगा तो निश्चय ही तेरी कुशल नहीं—कह कर उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। पिता के मुख पर अपने वचन की दृढ़ता टपक रही थी।

शाम हो गई है, ऐसा अनुमान कर मैं बिस्तर से ऊब कर उठ गया।

लड़का सड़क पर खड़ा रो रहा था।

भविष्य की चिन्ता बड़ी कठोर होती है। मुझे तीन दिन यहाँ आये हो चुके थे; पर अभी तक मैंने आफिस में चार्ज नहीं लिया था। क्योंकि इसकी जबरदस्त सम्भावना थी, कि मैं यहाँ से बुला लिया जाऊँगा। मैं यहाँ जिस मकान में ठहरा था उसी के सामने डाक्टर बाबू रहते थे। अभी तक मेरा उनसे कोई परिचय न था। फिर भी समय काटने के लिये मैंने उनसे सामना करके बात-चीत करने की ठान ली। इसलिये नीचे उतर कर टहलने लगा। पर जब वे दिखलाई न पड़े तो मुझे उन्हें बुलाने की हिम्मत न पड़ी। उनकी दस-पाँच बालों की लम्बी दाढ़ी, चिपटी तथा आगे को उठी हुई नाक, गहरी नीली आँखें और श्याम आवरण में सरो-सा एकहरा बदन मेरे ध्यान में सहज ही आकार ग्रहण करने लगा।

मैंने अन्यमनस्क होकर दूसरे मकान में बैठे एक सज्जन की ओर देखा, वे हाथ में गुड़गुड़ी लिये निश्चित मन से उसे पी रहे थे। उनका शान्त गम्भीर मुख-मण्डल अनजान हृदय में भी श्रद्धा उत्पन्न करता था। मुझे अपनी ओर देखते हुए जान कर उन्होंने

जिज्ञासा पूर्ण दृष्टि से मुझे देखा । मैं अनुत्तर न रह सका। अनायास ही पूछ पड़ा।

यहाँ डाकखाना कहाँ है बाबू साहब ?

पास हो तो है-उत्तर देकर उन्होंने बड़े प्रेम से पूछा।-आप इसी मकान में ठहरे हैं ?

जी हाँ! पर अभी मेरा यहाँ रहना निश्चित नहीं है।—मैंने विनीत स्वर में कहा।

अपना थोड़ा परिचय देते हुए मैं उनके समीप जा रहा। मेरे हृदय को ऐसा विश्वास हो रहा था, कि ये इस अनजान देश में भी मेरे परिचित हो सकते हैं! इसी प्रेरणा से मैंने उनके शुभनाम की जिज्ञासा की।

मुझे लोग जीवनशंकर कहते हैं।-सरल भाव से उन्होंने कहा।

भक्ति पूर्वक मैंने उनको अभिवादन किया। हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो उठा था। भारत के सर्वश्रेष्ठ चित्रकार जीवनशंकर— इस ज्ञान ने प्रवास के वास्तविक सुख को भीतर और बाहर सर्वत्र समुज्ज्वल कर दिया।

मैंने अत्यन्त कृतज्ञ होकर कहा—आज आपका परिचय पाने से मैंने यहाँ ठहर कर अपना सौभाग्य समझा।

उन्होंने इसे भी मेरी मर्यादा बता कर जब अनुत्तर कर दिया, तब मैं तर्कहीन पराजित विद्यार्थी की भाँति गम्भीर मुद्रा से उनकी ओर देखने लगा। उनकी सहज सरलता और विश्व-व्यापिनी प्रतिष्ठा के बीच वह सौम्य मूर्ति वस्तुतः हृदय को मोह लेने वाली थी। मैं स्वतः उसके समीप गर्व से नत हो गया।

इतने ही में पूर्व-परिचित डाक्टर बाबू छाते से घाम बचाये आ खड़े हुए। मैं विस्मय से उनकी ओर देखने लगा। वे उनकी ओर लक्ष्य कर कहने लगे।—

मैंने लाख मना किया पर तुम मानते नहीं! उस दुष्ट लड़के को क्यों अपने पास बैठने देते हो? तुम्हारी नकल कर उसने घर की सारी दिवालें रङ्ग डाली हैं और मेरी भो उससे एक किताब नहीं बची। उसका पढ़ना—लिखना चौपट करके तुम क्या पाओगे?—क्षुब्ध स्वर में तीर की तरह अन्तिम वाक्य मार कर उन्होंने उनसे उत्तर की आशा की!

शंकर महाशय जैसे लज्जा से डूब कर मेरी ओर देखने लगे। उनके भीतर का क्रोध गल कर आँखों में आगया था। संकोच के साथ उन्होंने कहा—आप मुझ पर व्यर्थ ही क्यों दोषारोपण करते हैं? मेरा उस पर क्या अधिकार है? आप उसे खुद ही मना कर मेरे पास बैठने से रोक सकते हैं।

डाक्टर ने कहा—हाँ, सो तो मैं खूब समझता हूँ। आप मुफ्त के बेगार को क्यों मना करेंगे। मूर्ख ने कल का भी दिन योंही बिता कर कुछ नहीं पढ़ा। अब भूखों न मार डाला बचा को तो जानना! आज ही शेखी भूल जायगी देखें उसकी कौन सहायता करता है?

शंकर महाशय को पूर्ण पराजित करके वे अपने घर की ओर चले गये।

मैंने डाक्टर के चले जाने के बाद देखा, ये जैसे अपना सब कुछ गँवा कर निरीह हो गये थे। मैं उन्हें नमस्कार कर, उदास मन अपने डेरे पर लौट आया!

उपर्युक्त घटना को बीते दो—तीन वर्ष हो चुके थे। मेरे हृदय में उस समय इस घटना का कोई प्रभाव पड़ा था यह मैं आज भी सोच कर अधिकार के साथ नहीं कह सकता। पर हाँ—जिस दिन इसके दुष्परिणाम का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ, उस दिन कितने अप्रत्यक्ष बालकों के लिये मैंने निराश हृदय से कहा था—अभागे देश में भेड़ों की तरह एक ही पथ में हाँक ले जाने वाले मूर्ख-अभिभावकों से उन्हें उनके कौन से अपराध का दण्ड दिला रहे हो भगवान !—मेरा हृदय दुःख, लज्जा और क्रोध से भर गया था।

उस दिन भादों की घनघोर घटा छाई हुई थी। एक बार कड़ाके की वर्षा हो चुकी थी। फिर भी बादल आकाश में धुएँ की तरह ऊपर-नीचे हो रहे थे। मैं कलकत्ता के अपने 'रूम' में बैठा आफिस के कुछ कागज जाँच रहा था।

कार्य की गम्भीरता ने मुझे तल्लीन कर रक्खा था। सहसा चौदह-पन्द्रह वर्ष के एक बालक ने मेरे समीप आकर प्रार्थना के स्वर में कहा।—बाबू मैं कम्पनी का कागज लेकर आया हूं।—पिऊनबुक उसने मेरे सामने रख दिया।

मैंने उसकी ओर देखकर लिफाफा उठा लिया। लड़के का सुन्दर मुख अनभ्यस्त परिश्रम से दोपहर के फूल सदृश कुम्हला गया था।

तुम कहाँ के रहने वाले हो।—मैंने उससे आँख मिला कर सन्देह वश प्रश्न किया।

पश्चिम—पटने का रहने वाला हूँ बाबू।—लज्जा से पीला होकर उसने कहा।

तुम डाक्टर साहब के लड़के हो !—फिर बिना किसी हिचिक के मैंने दूसरा प्रश्न किया।

हाँ...।—एक धीमी आवाज डरते हुए बालक के मुँह से निकली।

मैं लिफाफे को उसी तरह टेबुल पर रख कर बालक की ओर देखने लगा। उस प्रवास की एक-एक घटना मुझे प्रत्यक्ष होने लगी। बालक भीतरी आक्रमणों से क्षुब्ध होकर निस्पन्द खड़ा था।

तुमको ये तस्वीरें नहीं दिखाऊँगी बाबूजी ?—शोर करती हुई मेरी बालिका कमरे में आगई।

तुम नौकरी क्यों करते हो ? क्या डाक्टर बाबू ...।—मैंने लड़के से पूछा।

मैं घर छोड़ कर भाग आया हूँ, वह मुझे बहुत मारते थे।—उसने टूटे-फूटे स्वर में कहा। स्वाभिमान से उसकी आँखें पसीजी थीं।

बाबूजी मैं ये तस्वीरें तुमको नहीं दिखाऊँगी।—कहकर बालिका ने फिर मेरा ध्यान आकर्षित किया।

शोर न करो लता।—मैंने कुछ डाँट कर कहा।

ये तुम्हारे पड़ोसी जीवनशंकर की तस्वीरों का अलबम है। उन्हें तो तुम मजे में जानते होगे ?—मैंने लड़की के हाथ की तस्वीरों की ओर ध्यान दिला कर कहा।

हाँ—मैं तो उन्हें खूब जानता हूँ। स्कूल से अधिक वे मुझे

ड्राइङ्ग पढ़ा चुके थे। मैंने और उनसे प्रारम्भिक शिक्षा भी ली थी। वे मुझे बहुत चाहते थे।—बालक ने प्रसन्न होकर कहा।

लता बीच में टोक कर बोली—बाबू जी, जीवनशंकर जी आज अभी नहीं आये? मैं उन्हें अपनी तस्वीरें जरूर दिखाऊँगी।—कह उसने अपनी तस्वीरें सावधानी से रख लीं।

लता के कहने से मैं इस आकस्मिक घटना को सोचने लगा—यही लड़का और वही चित्रकार—कई बरस पहले और आज फिर—! मैंने उसे पीउनबुक पर दस्तखत कर लौटा दिया। और पूछा—क्या फिर उनके संग रह कर तुम चित्रकला सीखना चाहते हो? यदि मैं प्रबन्ध कर दूं।

बालक सोचने लगा। उसने कहा—और रुक कर कहा—

अच्छा... बाबूजी मैं फिर आऊँगा।

किन्तु फिर उसका पता नहीं लगा। कुछ दिनों के बाद जीवनशंकर जी भी लौट गये।

पर अबतक कभी-कभी लता पूछती है—बाबूजी, वह लड़का फिर नहीं आया?

प्रतीक्षा

तुम्हारी आँखों में बड़ा आकर्षण है, याज्ञिक !

तुम कहते हो—कुछ संकुचित होकर मुस्कराते हुए याज्ञिक ने कहा,—तो हो सकता है भाई। पर तुम देखना—मैं इससे अनिष्ट साधन कभी न करूँगा।

मुझे तो इसका विश्वास है, पर कोई दूसरा अपना अनिष्ट कर बैठे तो उसका दायित्व ...?

भाई तुम्हें तो सर्वत्र परिहास ही सूझता है! साधारण सभ्यता और शील का प्रेमपूर्ण निर्वाह क्या कोई अपवाद है ?

वर्मा ने देखा वह लज्जित हो गया है इसलिये कुछ हँस कर कहा—नहीं जी, अभाग्य से मेरी दृष्टि बड़ी पैनी और मन बड़ा सतर्क रहता है इसी से......।

तो क्या आप कुछ और ही सोच रहे हैं—याज्ञिक ने गम्भीर होकर कहा।

बड़े पागल हो! जाओ।—उसने खूब हँस कर बात उड़ा दी।

याज्ञिक उससे उमर में बड़ा नहीं, फिर भी वर्मा उसे उसका नाम न लेकर केवल याज्ञिक ही कह कर पुकारता था। याज्ञिक अपने अनतिदीर्घ वय ही में अधिक भद्र तथा अपने देश, साहित्य और सभ्यता को गौरव की दृष्टि से देखता था। इसीसे वह उसका आदर करता था। वह उसके हृदय को प्रिय था।

वर्मा के कहने से वह चला गया था। पर दस ही मिनट में फिर वह लौट कर आया तब वर्मा ने पूछा—क्या है जी?

हाँ एक बात तो कहना भूल हो गया...।

कहोगे तभी तो मैं जानूँगा,—बोलो।

यदि आपको जरूरत न हो तो आज शाम को हमें बोट-इञ्जन दीजियेगा। हमने अलबर्ट और मिस जेन से कह दिया है...।

बिना मेरी जरूरत जाने तो तुमने उनसे वायदा कर ही दिया, अब मेरी आवश्यकता होने पर भी तो तुम्हें चाहिये ही? खैर कुछ भी हो—याज्ञिक! तुम्हारा अनुरोध।—वर्मा मुस्करा कर कह रहा था।

फिर वही? कहता याज्ञिक चला गया।

याज्ञिक सरकारी हाईस्कूल में पढ़ता था। स्कूल में लड़के

जिन गुणों के होने से ख्यात होते हैं, वे सब उसमें परिपूर्ण थे। इसीसे अलबर्ट से—जो यहाँ की एक कंपनी के अफसर का लड़का था—मैत्री का सूत्र प्रारम्भ हुआ। अलबर्ट कभी-कभी इसके घर पर भी आया करता।

अलबर्ट यूरोपियन था। फिर भी वह इस भारतीय विद्यार्थी के समक्ष बड़ी उदारता से अपने हृदय को खोल उसकी मित्रता की भिक्षा से भरने लगा था।

अलबर्ट की ही बहिन का नाम जेन था। याज्ञिक से मिलने वह आज अपने भाई के साथ आई थी। अलबर्ट ने अपने मित्र की प्रशंसा से सरला का हृदय कदाचित इतना भर दिया था कि बेचारी मिस जेन बिना आश्चर्यान्वित हुए ही इससे नम्रता पूर्वक प्रथम दर्शन ही में हिलमिल गई। वहाँ विस्मय की एक भी रेखा उसने अपने लिये न पायी।

याज्ञिक ने उस दिन सायंकाल उसे मोटर बोट से नदी की सैर करने के लिये आमन्त्रित कर दिया था।

हालो पंडित याज्ञिक—अलबर्ट ने प्रवेश करके कहा।

अलबर्ट तुम किधर से आते हो, आओ।—याज्ञिक ने कहा। वह दालान में चिन्तित-सा बैठा था। अलबर्ट के आने से उसकी मुद्रा टूट गई।

मैं स्कूल से आ रहा हूँ। मेरे यहाँ चलो याज्ञिक!—आग्रह से उसने कहा।

अच्छा—नहीं, मैं टहलने जाना चाहता हूँ, आज हमें छोड़ दो।

वाह...चलो मैं भी टहलने चलूँगा।

याज्ञिक हठ न कर सका। वह अलवर्ट के साथ हो लिया।

याज्ञिक इस साल से कालेज पहुँच गया था। पर दोनों में पूर्ववत् मैत्री बनी रही। अब प्रायः अलबर्ट स्कूल से सीधे इसके यहाँ आता और इसे अपने यहाँ पकड़ ले जाता। यज्ञिक भी शाम तक वहाँ रहने में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव करता।

दोनों जब बँगले पर पहुँचे, तब अलवर्ट का प्यारा फाइडो—कुत्ता—दुम हिलाता हुआ उसके पास आगया। अलबर्ट ने—फाइडो, फाइडो प्यार से चुमकार कर कहा। फाइडो प्रेम से उछल रहा था। याज्ञिक ने उसे गोद में उठा लिया।

अलबर्ट का फाइडो सम्बोधन सुन कर जेन बाहर आगई थी। उसने उन लोगों के समीप आने पर हँस कर कहा—ओह पंडित जी!

आज तो ये टहलने जाना चाहते थे, मैं पकड़ लाया जेन।—बीच में ही अलबर्ट बोल उठा।

जेन ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल हँस कर एक तीव्र दृष्टि याज्ञिक पर डाली। और अलबर्ट से कहा—पापा ने तुम्हें बाजार से फल लाने के लिये कहा है।

अच्छा, तुम जाना नहीं याज्ञिक। मैं शीघ्र लौट आऊँगा।—अलबर्ट शीघ्रता से साइकिल लेकर बाजार चला गया।

अलबर्ट के जाने के बाद कुछ क्षण दोनों स्तब्ध रहे। जेन ने मौन भङ्ग कर कहा—कल तुम आये नहीं मैं राह देख रही थी ?

तुम भूलती हो मैं कल सुबह तो आया था।

दोनों हरी-हरी घास के फर्श पर टहल रहे थे। जेन को साधारण हँसी ही में वह उत्तर देकर रह गया, देखता तो उसे स्पष्ट मालूम पड़ता—कि उसके रक्त-कपोल-देश पर कितना व्याकुल अनुनय नाच रहा है! जेन की छोटी किन्तु मर्मस्पर्शिनी आँखें याज्ञिक के हृदय तल में दौड़ जाना चाहती थीं।

हाँ—हाँ, कल सुबह आप आये थे। मैं भूल गई थी। क्षमा कीजियेगा।—जेन ने हँस कर अपनी मूर्खता स्वीकार की।

नहीं जेन! तुम भूल जाया करो, मैं तो क्षमा करूँगा ही।—कह कर याज्ञिक कनेर वृक्ष की डाली झुकाकर उसका फूल देखने लगा।

जेन ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। बात जम नहीं रही थी, याज्ञिक की उदासीनता और अपने हृदय की एक मधुर विवशता से पीड़ित होकर वह अपने ही विश्राम-वन में भूली हुई चंचल मृगी सी व्याकुल हो उठी। पर, अपनी व्याकुलता को छिपा कर उसने सहज भाव से कहा—तुम इतने उदास क्यों हो याज्ञिक ?

इस प्रश्न से याज्ञिक की आँखों में आँसू आ गये। फिर भी उसने कहा—कुछ नहीं मिस जेन! चिन्ता की कोई बात नहीं।

यदि मुझसे ही छिपाना है तो छिपा लो।—जेन ने कातर होकर कहा।

याज्ञिक के हाथों से कनेर की डाली छूट गई थी। उसने

अपने भावों पर एक कोमल शासन रख कर जेन से कहा—मेरे हृदय में यह ईमन की पहली कड़ी भी पूरी नहीं होने पाई—जो मिलन रात्रि के प्रथम चरण में अभी-अभी झंकृत हो उठी है—कि मेरे चारों ओर से शंख, तुरही और ढोल के गंभीर घोष युद्ध-निमन्त्रण लेकर पहुँच गये। मैं इसकी उपेक्षा कर उसे पूरी सुन पाऊँगा? आह जेन!

जेन ने जो कुछ समझा उससे वह आत्मविस्मृत होकर गिर ही पड़ना चाहती थी कि याज्ञिक के अन्तिम सम्बोधन ने उसे सचेत कर दिया। उसने याज्ञिक के ऊपर एक दृष्टि डाल कर अपनी नजर नीची कर ली। कुछ बोली नहीं।

याज्ञिक ने उसी स्वर में फिर कहा—किन्तु मैं इस निमन्त्रण को अस्वीकार नहीं कर सकता। आह, माँ का अह्वान! देश पर होने वाले अत्याचार का प्रतीकार करना ही होगा प्रिय जेन!

हाँ—हाँ, उसकी तुम उपेक्षा ही कैसे कर सकते हो? किन्तु वह काम केवल तुम ही से पूरा न होगा।—जेन ने संयत होकर धीरे से कहा।

नहीं—देखो तुम वाधा न उपस्थित करना।—याज्ञिक ने जोर देकर कहा।

जेन की आँखों से छल-छल आँसू गिरने लगे। उसने करुण स्वर से कहा—ना—मैं तुम्हारे मार्ग में एक रोड़ा भी न डालूँगी। तुम माँ के वीर पुत्र हो! जाओ वीर......मैं भी......—। वह चुप हो गई। एक रूखा तेज उसकी कोमलता को दीप्त कर गया।

जिनकी महत्वाकाँक्षा की नौका पर चढ़ कर इस सात समुद्र

पार के देश में आज इन श्वेत शासकों ने अपनी विजय पताका फहराई है—उसी को जेन की छाया में स्पष्ट देख कर याज्ञिक दो क्षण विमुग्धमन खड़ा रहा गया। उसकी समस्या हल हो गई थी। उसने सहज भाव से कहा—मैं तुम्हारी वाणी को रक्षा ही में हृदय के रक्त को उत्सर्ग कर दूँगा जेन! विश्वास करना। अच्छा जाता हूँ।—याज्ञिक भूल गया कि अलबर्ट उसे ठहरने को कह गया है। वह चला गया।

जेन कुछ बोली नहीं। वहीं हरी-हरी घास पर लेट गई। अस्तंगत रवि की स्वर्णाभा उसके चारों ओर बिखर पड़ी थी। याज्ञिक कम्पाउन्ड के बाहर हो गया था। जेन उसे रोक न सकी। उसका दुर्बल हृदय—अपमान और लज्जा से—बालकों सा सिसकने लगा। पर आँख से एक बूँद भी आँसू न गिरे। उसने जब सँभल कर देखा तो पश्चिम में सूर्य डूब रहे थे। पराजित हृदय कल्पना की डोर पकड़ने लगा। वह सोचने लगी—वह एक कली थी। अभी इस चिर परिचित प्रभात में स्वर्ण किरणों के सुखद स्पर्श से पुलकित होकर फूट पड़ी है। किन्तु वह परदेशी पथिक अपना सब कुछ समेट कर निस्पृह भाव से चला जा रहा है। वह कैसे रोकेगी? वह रो पड़ी।—मेरे देवता। तुम स्वर्णरथ पर चढ़ कर जब आये थे, तब तुम्हें देखते ही मैं सारी पँखुरियों से खिल पड़ी थी। अब सोचती हूँ—तुम्हें एक टक देखते उस समय मुझे लज्जा भी न आई थी? हाय!—तुम कितनी उपेक्षा से जाते हो? जाओ। मैं अपना सम्पूर्ण सौरभ तुम्हारे चरणों पर लुटा चुकी हूँ; अब अपने को भी धूल में मिला दूँगी। यही मेरी चरम गति है! क्या...नहीं—तुम रूठ न जाना। मैं कल दूसरी कलियों में हँसती हुई तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी...मेरे देवता—ज़ाओ!

ओह ! उस दिन तो वह तुमसे लिपटी पड़ती थी यार !—वर्मा ने हँस कर कहा ।

हृदय के भीतर मीठी रागिनी बजती है अथवा झंझा का भीषण उत्पात है, बिना इसे जाने ही टाल देना तुम्हारा हास्य है ! हाय मनुष्य इतनी रसिकता !—याज्ञिक ने कुछ रुष्ट होकर कहा ।

भाई—वर्मा ने मुस्किरा कर कहा—आनन्द में, क्रोध में सभी समय जब किसी का प्यार हृदय को घेर कर बैठा रहता है तब वह मनुष्य अपने में ही लीन रहना चाहता है । उसे दूसरों की उपस्थिति पीड़ा देती है । और......।

और तुम्हारा माथा फोड़ना चाहती है—याज्ञिक ने उसे बीच ही में रोक कर कहा—तुम पाँच-छ दिन से कहाँ थे ?—बात बदल कर उसने पूछा ।

कहीं थे इससे क्या ?—फिर वर्मा ने कहा—हाँ—यह बताओ, उस दिन क्या था ।

कुछ नहीं—उसका परीक्षा-फल उस दिन निकला था । वह पास हो गई थी ।—याज्ञिक ने उत्तर दिया ।

हाँ—हाँ आप ही ने तो परीक्षा के लिये उसे तैयार किया था ।—वर्मा ने कह कर हँस दिया ।

क्या—! किसने क्या कहा वर्मा ? देखो नाराज न होना, किसी का दिल दुखाना हास्य का गुण नहीं ।—कुछ अधिक गम्भीर बन कर उसने अपनी बात कही । फिर भी जैसे कुछ जानने के लिये उत्सुक होकर वह वर्मा को देख रहा था ।

तुम्हारे अलबर्ट के फादर ही ने एक दिन कहा था । इसका

श्रेय वह तुम्हीं को दे रहे थे। आज कल तुम इतने चिड़चिड़े मिजाज के क्यों बने जा रहे हो ? यह एक बड़ी दुर्बलता तुममें, मैं देखता हूँ, आ रही है। मैंने कोई बुरा बात नहीं कहा था। संभव है हमारा टोन......।

हो सकता है—रोक कर याज्ञिक ने कहा—इस बात को जाने दो।

अब मुझे भी जाने दो—वर्मा ने कहा।

ना—तुम से कुछ कहना है इसीलिये......।

क्या !—वर्मा ने स्नेह से पूछा।

मैं अब पढ़ लिख कर क्या करूँ ? सब व्यर्थ है......।

पढ़ लिख कर कोई काम करना !—वर्मा ने उसकी बात छीन कर कहा—फिर ब्याह करना। तब बच्चे होंगे।

बच्चे होंगे यही चरम उद्देश ?—घृणा से देख कर याज्ञिक ने कहा—जिस देश के प्रमुख नेता कोड़ों की मार से स्वर्ग के द्वार पर ठेल दिये जाते हों और अन्न की ज्वाला जहाँ लक्षाधिक नर-नारियों को प्रति वर्ष लील जाती हो, वहाँ इस उद्देश—को लेकर......।

अरे बाबा इसका सुख जानते हो ?—वर्मा ने हँसते हुए उसे उत्तर दिया—फिर तुम उसी में अनुकूल मार्गों की सृष्टि करना। शिक्षा उसमें सहायक होगी। और क्या ?

नहीं भाई—याज्ञिक ने विद्रोह करके कहा—आज देश को जिसकी आवश्यकता है उसे ही......।

देश की क्या आवश्यकता है ?—वर्मा ने रोब से कहा—कुछ नहीं—मैं सब समझता हूँ।

मैं आत्म-वंचना नहीं करूँगा।—याज्ञिक ने क्षुब्ध होकर कहा—तुम समझते हो इसी से कहता हूँ।

कहते तो हो पर मानते नहीं। फिर इसका फल ?—वर्मा ने पूछा।

वह तो देखोगे ही !—हँस कर याज्ञिक ने कहा—तुम्हारे तर्कों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं। पर सच तो यह है, कि पराधीन जाति की शिक्षा, श्रम, व्यवसाय और सभी कुछ उसी के भीतर ज्वाला बन कर धधकता है, उसका उनको कोई सुख नहीं। पराधीनता के इस कलङ्क को—अभिशाप को—नष्ट करना होगा भाई। ऐसी परिस्थिति में...।

ना—जोर देकर वर्मा ने कहा—जिनमें कर्तृत्व शक्ति नहीं है; किन्तु एक उन्माद है—वे ही ऐसा कहते हैं। मेरा यही विश्वास है। आज भी देश में ......।

सो सब कुछ नहीं—याज्ञिक ने सिर हिला कर कहा—मैंने अपना नाम भेज दिया है।

अरे—सच !—वर्मा ने याज्ञिक को तीव्र दृष्टि से देख कर कहा—भाई तुम्हारी इच्छा।

मेरी इच्छा तुम्हारी आज्ञा एवं आशीर्वाद को प्राप्त करना चाहती है। इसीलिए उस समय मैंने तुम्हें जाने से रोक लिया था; समझे।—याज्ञिक ने स्नेह से मचल कर कहा।

वर्मा क्या कहे ? उसे जो सम्मान देकर याज्ञिक ने अपनी

प्यार की झोली बढ़ा कर आशीर्वाद की भिक्षा माँगी थी, उस पर से बड़े-बूढ़ों की तरह उसकी संपूर्ण भावना को कुचल कर वह अधिकार से उपदेश पूर्ण आज्ञा दे, यह वर्मा को ठीक न जान पड़ा। वह कुछ देर तक भाव-मग्न होकर निश्चेष्ट बना रहा। फिर हँस कर उसने कहा—आज जिसके निकट सब से अधिक आज्ञा लेने की जरूरत है; तुम को आज्ञा उसी से लेनी चाहिये। रहा मेरा आशीर्वाद वह तो ....।

हाँ—वह सब प्राप्त कर चुका हूँ।—याज्ञिक ने बात टाल कर कहा—तुम अब कंजूसी करोगे क्यों ?

आज बसन्तकाल के मधुचक्र-सा रस से परिपूर्ण तुम्हारा जो हृदय है; वह बड़ा भयानक है ! इस नवीन रसोद्वेग को अपने भीतर पचा लेने के लिये बड़ी भीषण अग्नि चाहिये, याज्ञिक !—वर्मा व्याकुल होकर कह रहा था।

याज्ञिक जसे कुछ न सुन कर चुपचाप खड़ा था। वर्मा को जैसे नींद आ गई थी। कुछ देर में चैतन्य होकर उसने कहा—तुमने जिस पथ में पैर रखा है मुझे तुमसे उसी की आशा थी। आज विष्णु का चाप बिना चढ़ाये ही तुमने जो मेरे मन का सन्देह दूर कर दिया ,उसके लिये मेरे निकट तुम धन्यवादार्ह ही हो। तुम्हारे जीवन का यही राजमार्ग है, याज्ञिक !—स्नेह से उसके हृदय को सन्तोष देकर उसे अपने बाहु में वर्मा ने जकड़ लिया। दोनों कुछ क्षण मुग्ध होकर एक दूसरे को देखते रहे।

आगामी वियोग की कल्पना जब सही न जा सकी तब वर्मा कह उठा—देर हुई। जाता हूँ भाई। स्टेशन पर...।

मिलना—कष्ट से कह कर, वर्मा के पीठ पीछे याज्ञिक ने

मोती सरीखे दो अमूल्य अश्रुविन्दुओं से उसके प्रेम की कीमत देनी चाही। पर वर्मा ने फिर कर देखा भी नहीं। याज्ञिक की छल-छलाई आँखें देखती रहीं—वह तेजी से चला जा रहा था।

जेन! इसी जहाज से वे लोग भी जायँगे, जिन्हें सरकार ने भारत से निर्वासित किया है—अलबर्ट ने आकर कहा—क्यों, तब तो यदि वह नाम उन्हीं का हो...।

अलबर्ट! वह दूर देखो—जेन ने समुद्रतट को ओर संकेत करके कहा—कदाचित पापा आ रहे हैं। आगे-आगे वह फाइडो ही तो है?

उनसे आज खूब भेंट होगी। मेरी कल्पना तू सच हो! —जेन उसे विरत न कर सकी वह प्रसन्न होकर बड़बड़ा रहा था—बड़ा आनन्द जान पड़ता है जेन! तुम क्या करोगी?

अलबर्ट ने जेन के दिखलाए हुए लक्ष्य की ओर देख कर भी अपनी अधूरी बात पूरी की। उस प्रसन्नता में जैसे वह और कुछ नहीं जानना चाहता था। इसलिये वह मुड़ कर उसके मलिन मुख पर अपनी प्रसन्नता ढूँढने लगा।

आह! कुछ नहीं—मैं घर लौट जाऊँगी।—सहसा जेन के मुँह से निकल पड़ा। जेन का सब कुछ भीतर-बाहर क्षुब्ध—पागल हो रहा था।

ऐसा क्यों जेन?—आश्चर्य से अलबर्ट ने प्रश्न किया—आज इसी जहाज से चलने की सूचना तो तुमने अपने साथियों को दी है। फिर...?

ठीक है—मैं जाऊँगी तो ! देखो पापा आगये ।

अपनी हृदय की दुर्बलता से पराजित होकर वह जैसे छोटी हो गई थी। यह आश्चर्य कहीं उसके पापा न जान लें, इस सन्देह से भयभीत हो कर वह काँप उठी ।

जेन, देख तो उन डोंगियों में सैकड़ों आदमी निर्वासितों को पहुँचाने आ रहे हैं। कहीं ये मूर्ख यहाँ तक पहुँचने के हठ में जहाज वालों से लड़ न बैठें ।—जेन के पापा ने पहुँचते ही कहा ।

वे मूर्ख नहीं, पापा ।—धीरे से गम्भीर स्वर में जेन ने कहा ।

इन्हीं लोगों के कारण दो बजे रात जहाज खुलेगा पापा ।—अलबर्ट ने बतलाया ।

जेन के पिता अपनी इस मातृहीना बालिका को अधिक प्यार करते थे। इसीलिये वह उनके सम्पूर्ण विचार पथ को अतिक्रमण कर आज जहाँ खड़ी है ; वहीं वृद्ध पिता की पवित्र दया आशीर्वाद की भाँति फैल रही है ; किन्तु आज कुलियों के लिये डेपुटेशन में विदेश जाती हुई अकिञ्चित विरह कातरा पुत्री से अपनी एक छोटी-सी बात का विद्रोह करते देख वे दुखी हो गये। सोचने लगे—इस विद्रोह का विधायक कौन है ? दूर—एक झलमली सी रेखा दीख पड़ी । क्या वह मेरी भूल थी ? नहीं। मेरी प्यारी बच्ची ! तेरी आकाँक्षा को ईसा की पवित्र दया मिले। वृद्ध की आँखें आर्द्र हो गई ।

गुड नाइट महाशय !—सहसा वर्मा ने पास आकर कहा ।

ओह ! गुडनाइट, तुम कहाँ आये मिस्टर वर्मा ?—जेन के पिता ने पूछा ।

अपने याज्ञिक को छोड़ने आया हूँ, आपको पता नहीं ? वह निर्वासित किया गया है। आप कहाँ ?—वर्मा ने उत्तर देकर प्रश्न किया।

पापा—मैं याज्ञिक को पकड़ने जाता हूँ।—बीच ही में अलबर्ट ने शीघ्रता से जाते हुए कहा।

मिस्टर वर्मा—जेन के पिता ने जेन की ओर दृष्टि डाल कर कहा—यह कुलियों का डेपुटेशन लेकर जा रही है। इसी से हम लोग इसे यहाँ छोड़ने आये हैं।

वर्मा ने सशंक दृष्टि से देखा—वह जैसे सहस्रों बन्धनों में कसी हुई निरीह बालिका ! हायरे उसका यह कठोर दर्द ! वर्मा सहानुभूति से भर गया। उसके मुँह से निकल पड़ा—बालिका, तुम्हारा यह स्थान ?

इसी समय याज्ञिक ने अलबर्ट से अपना हाथ छुड़ा कर जेन के पिता को अभिवादन किया। आश्चर्य से जेन के पिता ने उलाहना देते हुये पूछा—याज्ञिक !—कहाँ हो ? अपनी कोई खबर तुमने न दी। ऐसे भूल गये !—वृद्ध का स्नेह उनके स्वर में फूटा पड़ता था।

जेन के हाथों में अपना हाथ देते हुये याज्ञिक ने कहा—पिता भूल नहीं गया। काम ने समय ही नहीं दिया !

यह असत्य उसकी रक्षा की यथेष्ट नहीं, इसी से जेन की ओर अपनी कातर दृष्टि डाल कर उसने जैसे क्षमा याचना की।

यही महत्ता तो इनको जीवन युद्ध में विजयी करेगी।—जेन ने फिर भी व्यङ्ग किया।

वर्मा जो अब तक चुपचाप खड़ा था, बोल उठा—नहीं जेन, तुम भूलती हो ! इतने के लिये तो मैं भी उसका साक्षी हो सकता हूँ कि......।—फिर बात बदल कर उसने कहा—इन दो वर्षों में जिस परिश्रम से इन्होंने देश की सोती हुई शक्ति को जगाया है, वह अभिनन्दनीय है।

जेन का हृदय एक अपरिचित आनंद से फूल उठा। उसके अन्दर का मान—जो कठोर होकर उसे अनजाने पथ पर साहस से लेकर दौड़ रहा था,—वही, उसने देखा—शक्तिहीन तरल होकर उन चरणों पर लोटना चाहता है ! लज्जा से संकुचित होकर वह दूसरी ओर देखने लगी।

पिता, जेन इस कार्य में केवल भावुकता के बल पर चल सकेगी ?—याज्ञिक ने जेन की ओर देखकर उसके पिता से पूछा।

मैं नहीं जानता—उसके पिता ने कहा।—हाँ—मेरी दुलारी बच्ची—हठी बच्ची, अब लौटेगी नहीं ! यह पिता होने से मैं जानता हूँ। बच्चे ! तुझे मालूम नहीं ! आसाम में चाय के कुलियों के लिये उनकी असंख्य यंत्रणाओं से द्रवीभूत होकर इसने कैसी अग्नि प्रज्वलित कर दी ? यह तो अपना ही विद्रोह था याज्ञिक ! वहाँ अपने मामा— जो चाय के बागीचों के एक बड़े मालिक हैं—के निमन्त्रण पर जाकर उनके और अपने स्वजातियों ही के प्रति तो इसने लड़ाई छेड़ दी ! मेरी जेन !—उनका हृदय प्रेम और पश्चात्ताप से धधकने लगा। आँसू गिराते हुए वे जेन के लिये कहने लगे—पर, आह मैं अनुरोध करूँगा—अपनी जेन के लिये, चाहूँगा अपने कलेजे के टुकड़े के लिये, इसे तेरे हाथों सौंपना। इसलिये कि इसके मार्ग में तू उसकी रक्षा करेगा।

यह तू ही कर सकेगा। तू जानता है—तुझे जेन कितना चाहती है!

जेन ने चीख कर कहा—पापा।

फिर भी उसके पिता ने याज्ञिक से कहा—मुझ बूढ़े को सान्त्वना—सन्तोष दे दे मेरे प्यारे।

ना—ना,—जेन ने विकल होकर कहा—मैं उनके मार्ग में बाधक न बनूँगी। वे...... आह!—वह दूर हट गई।

अप्रतिभ याज्ञिक मौन था।

वर्मा आश्चर्य से जेन की ओर देख कर सोचने लगा—यह प्यार के लिये केवल हाहाकार करने वाली और अपने प्रबल तूफान में डूबने-उतराने वाली नहीं। जो कुछ अपना है, उस पर शासन करने वाली यह शक्तिमयी नारी है। इसके सामने किसी की उपेक्षा—दया अपनी महत्ता न रख सकेगी। उन्होंने मन ही मन कहा—जेन, प्रेम के द्वारा जिस कल्याण भावना की अमर सृष्टि तुम्हारे हृदय में हुई है वह हम सब पर विजय प्राप्त करे। मेरा उसके निकट शतशः नमस्कार है।

भाई वर्मा, अब हमें यहाँ आफिस में जाना चाहिये।—याज्ञिक ने धीरे से कह कर नमस्कार करते हुए मुड़ पड़ा।

विदाई का यह अन्तिम वाक्य था—क्योंकि वर्मा के मुँह से उस समय तक एक शब्द भी न निकल सका था।

हमारा देश निर्बल नहीं, वह अपने हाथों अपनी रस्सियों

से अपने को बन्धन में डाले हुये है। तुम भूल न जाओ—जिस दिन उसके करोड़ों हाथ उससे मुक्त होना चाहेंगे, उन्हें किसी भी अस्त्र की आवश्यकता न होगी। इतनी महान आकाँक्षा को—इस बड़ी आकुलता को—कौन दबायेगा ?—याज्ञिक, बर्लिन की एक चौड़ी पटरी पर जिसके दोनों ओर नीबू के पेड़ लगे थे, टहलते हुये एक जर्मन मित्र से दृढ़ स्वर में कह रहा था।

तो क्या अभी भी उनमें इस बन्धन से मुक्त होने की आकाँक्षा ने जन्म नहीं लिया ? तुम क्या कहते हो ??—आश्चर्य से उस जर्मन ने पूछा।

नहीं,—आकाँक्षा ने जन्म ले लिया है। नहीं तो तुम उसकी बात यहाँ कैसे सुन पाते ? पर सच तो यह है कि हम लोग अभी उसे ठीक से पहचान नहीं सके हैं। क्षुद्र स्वार्थों के आवरण ने हम लोगों पर जिस मोह का पर्दा डाल रक्खा है, उसे अलग हटा देना हमारे नेताओं का कार्य शेष रहा है। नहीं तो हमें स्वतंत्रता कहीं से खरीद कर लानी नहीं है। सिर्फ एक कदम आगे...। याज्ञिक स्वदेश की स्मृति से उत्साहित हो गया था।

क्या तुम उसे बहुत समीप समझते हो ?—जर्मन ने व्यङ्ग किया—ठीक है !—पर शीघ्र ही बात बदल कर पूछा—आज यहीं मुहल्ले में भारत के मज़दूरों की दशा पर प्रकाश चित्र (magic lantern) द्वारा व्याख्यान होगा। सुनोगे मि. याज्ञिक ?

हाँ चलता हूँ—उसी तरह टहलते हुये याज्ञिक ने कहा—मेरी बात पर विश्वास करो। मेरा देश अपनी परीक्षा में खरा सोना उतरेगा। स्वयं तप कर अपनी चमक से संसार को चकित कर देगा।

जर्मन उत्तेजित हो उठा।—उसने तीव्र स्वर में पूछा—तुम लोगों की धमनियों में रक्त का प्रवाह होता है ? कभी अपमान की तीव्र ज्वाला तुम्हारे शीतल हृदय को छूती है ? तुम्हारी महात्त्वाकाँक्षा ने कभी संसार को रौंद कर अपना मस्तक उठानी चाही है ?—झूठ है। क्षुद्र आदर्शों के पीछे पागल तुम भारतीय सचमुच कौतुक की वस्तु हो !—कह कर जर्मन ने याज्ञिक की ओर देखा।

हमारी जाति हत्यारों की नहीं—आँखें मिलाकर साहस से याज्ञिक ने कहा—षड़यन्त्र हमारे लिये दुराचार है। हमारी दृष्टि में जो सत्य है वही शिव और सुन्दर है। मेरी राजनीति धर्म और सदाचार को अपने गर्भ में रक्खेगी। भलेही तुम पागल कहो, पर मेरी महत्वाकाँक्षा हमें शैतान के चंगुल में फँसाने वाली पिशाचिनी नहीं। आज हम अधिक प्रकाश में हैं।—वह दृढ़ था।

वह लोग एक विस्तृत मैदान में आ गये थे।—

याज्ञिक ?—घबड़ा कर जर्मन ने कहा।—आह ... देखो वहाँ आग की लपटें ! दौड़ो—यह क्या ?

याज्ञिक ने आश्चर्य्य से उधर देखा। मैदान में खड़े तम्बू के ऊपर बादलों-से छाये हुये धुएँ को भेदकर अग्नि की दस-पाँच लपटें इधर-उधर फैल रही हैं। लोग इधर-उधर शीघ्रता से हटकर भी उस दृश्य का परिणाम देखने की उत्सुकता में एक तरफ जम रहे हैं।

याज्ञिक के मन में अतीत और भविष्य के अनेकों स्वप्न उदय और अस्त होने लगे। कल्पनाओं की चिनगारियाँ उड़-उड़ कर

उसके हृदय पर एक अज्ञात वेदना की तड़प दे जाती। वह बहुत तेजी से बढ़ रहा था। भारत के मजदूरों के लिये प्रचार करने वाला यह कौन तपस्वी यहाँ होम किया जा रहा है? कौन...! आह...वह...? ओह—उसे याद पड़ी,—उसके पिता ने कहा था—यह अपनी जाति ... अपना—ऊँह..मामा का...विद्रोह...। उसका प्राण अनेक भावनाओं में फँस कर तड़पड़ा उठा।... ऐसा भी हो सकता है...?—वह सूख गया। उसके चेहरे पर स्याही दौड़ गई। फिर दृढ़ता से उसने चिल्ला कर कहा—कभी नहीं—नहीं—! उसके शब्द उस जनरव में डूब गये। उसने ऐसी कितनी दुर्भावनायें की थीं? यह सोचते ही वह सचमुच अपने प्रमाद पर हँस पड़ा।

इस भयानक आग ने उसे चारों ओर से जकड़ रक्खा है। कैसे वह निकलेगी?—एक सहृदय ने कहा।

याज्ञिक झल्ला उठा—मैं पागल हो जाऊँगा! ओह...।

लोग चिल्ला रहे थे—शीघ्र आग बुझाने की चेष्टा करो।

एक ने कहा—अरे वह बेचारी जली जा रही है।

लोग धिक्कारने लगे—घोर नीच था, वह—जिसने आग लगा दी।

दयामय मसीह! तू अपने आँचल की छाया दे।—आस्तिकों ने करुणा विगलित होकर कहा।

याज्ञिक इस कोलाहल को स्पष्ट सुन रहा था। उसने अनुभव किया,—जैसे उसका सर्वस्व इस ध्वंस में लीन हुआ जा रहा है। अन्तर की पुकार भी अब मौन हो चुकी थी। वह अपने को

सभाँल न सका। वज्र की तरह निर्मम भाव से वह उस अग्नि-गृह में धँस पड़ा।

जर्मन सिहर उठा। अग्नि शामियाने को चारों ओर से घेर चुकी थी। जर्मन चिल्ला उठा—याज्ञिक ?

लोग आश्चर्य से उसे देखने लगे। वह जर्मन पागल निरीह-सा खड़ा देख रहा था।

भीड़ में से एक पुकार उठा—शाबास ! वह आया।

उसके साथी जर्मन ने भी देखा,—याज्ञिक दैत्य-बल से एक रमणी को उठाये चला आ रहा है। उसके कपड़े जल रहे थे। लम्बे बालों वाला उसका मस्तक भयानक था। बाहर आते-आते वह गिर पड़ा। जेन !—एक कातर पुकार उसके कण्ठ से निकली।

भीड़ उधर ही आने लगी।—डाक्टर बुलाओ। शीघ्रता करो। हवा आने दो। दूर—हटो।—का शोर फिर मच गया।

वह जर्मन याज्ञिक का जला हुआ शरीर देख कर डर गया। ओह—आह—बेहोशी में पीड़ा से वह कराह रहा था। इस दस-पाँच क्षण की यह घटना उस जर्मन के मस्तिष्क में अनन्त काल का विस्मय बन गया था। वह हतबुद्धि था। फिर भी उसने याज्ञिक को जोर से आवाज दी।

दो-तीन बार पुकारने से वह जरा होश में आया। उसने कहा—आह ! वही थी। मेरे अनन्त जन्मों की चिर संगिनी ! मैं पहिचान कर भी न पा सका। समाज...झूठे भ्रम ... आदर्श... मुझे और जलने दो—उसने क्रोध से कहा—मैंने उसके प्रेम का अपमान किया था।—पीड़ा से वह बेहोश हो गया।

याज्ञिक ! याज्ञिक !—जर्मन ने फिर पुकारा ।

वेदना भरे स्वर में उसने कहा—रौरव के सारे यम मुझे खींच रहे हैं । ज्वाला ...... आह ...... ।

आहत पक्षी की तरह दो बार तड़प कर उसने वहीं दम तोड़ दिया ।

युवती का सारा शरीर भस्म हो गया था ; उसके शरीर से चिराइँध गन्ध निकल रही थी । फिर भी उसके जले होठों पर हँसी थी । कैसी विलक्षणता !

किसी ने उसकी शान्ति भंग नहीं की, वह चुपचाप पड़ी थी । स्पन्दन हीन ।

डाक्टर आ गये थे ।

उसकी परीक्षा के लिये उन्होंने अपना हाथ बढ़ा कर देखा ।

वह चीख उठी—यह वह स्पर्श नहीं ! इसमें ज्वाला है ! दूर करो ।

डाक्टर हट गया । उसने कहा—प्रार्थना कर लो ! आह...अब नहीं, बचेगी ।—यह धीरे से उसने कहा ।

लोगों ने सुना साँय-साँय की आवाज में चार-पाँच लाइनें कदाचित किसी कविता की वह गुन-गुना रही थी । पवित्र बाइबिल की वह प्रार्थना नहीं थी, न मसीह के प्रति विश्वास प्रकट करने वाले वे वाक्य ही थे । किन्तु उसके चेहरे पर, जब वह स्पन्दन हीन थी—स्वर्ग की शान्ति हँस रही थी ।

सभी चले गये। वह जर्मन वहीं पड़ा था। उस निर्जन मैदान में सर्राटे से हवा दौड़ रही थीं। उसके कानों में उस युवती के वे अन्तिम शब्द गूँज रहे थे—

मैं अपना सर्वस्व तुम्हारे चरणों पर लुटा चुकी हूँ। अब अपने को भी धूल में मिला दूँगी। यही मेरी चरमगति है।

तुम रुष्ट न होना; मैं कलियों में हँसती हुई तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी! मेरे देवता!!

किन्नरी

दरबार लगा हुआ था, शाहनशीं के नीचे गद्दी पर महाराज मसनद के सहारे बैठे धीरे-धीरे सटक से दो चार कश तम्बाकू खींच लिया करते थे। सामने गायिका गा रही थी और अन्य सभी लोग शान्त चित्त बैठे थे। वीणा की झंकार के साथ-साथ महाराज आनन्द-विभोर हुये जा रहे थे। सहसा तीन वर्ष का राजपुत्र भृत्यों से घिरा, एक बालिका का हाथ पकड़े महाराज के सामने आ खड़ा हुआ। बालक ने आनन्द से आतुर होकर बालिका की ओर हाथ दिखलाते हुए कहा—किन्नरी!

महाराज ने देखा, एक भोली-भाली स्वर्ण प्रतिमा सी सुन्दर बालिका अपनी सजीवता को प्रमाणित करने के लिये, अधर-पल्लवों में ऊषा की मधुर किरणों-सी हँसी छिपाये खड़ी है। महाराज ने राजपुत्र को खींच कर बगल में बिठा लिया। बालिका भी महाराज का आदेश पाकर जहाँ खड़ी थी वहीं सिकुड़ कर बैठ गई।

गायिका संकोच से ढीली पड़ गई, उसके मुँह से स्वर नहीं निकलते थे, केवल वीणा ही बज रही थी। किन्नरी उसी की लड़की थी। राजपुत्र बाग में खेल रहा था। वह कुतूहल वश उसे देखने गई थी। वहीं से चपल राजपुत्र ने उसे अपने साहचर्य्य में ले लिया था। सरल राजकुमार एवं सुन्दरी किन्नरी को गायिका समुद नेत्रों से देख रही थी।

बहुत दिन बीत गये।

किन्नरी प्रमोद-बनके एक कुञ्ज में बैठी, अपने पालतू मैना के पिंजड़े पर दोनों हाथ टेके हुए गा रही थी—

करुणा के आँचल पर निखरे,
घायल आँसू जो हैं बिखरे—
ये मोती बन जायँ,
मृदुल कर से लो सहला दो।
सुधा-सीकर से नहला दो॥

सामने के शिला-खण्ड पर बैठे नवीन महाराज अपनी शैशव-

सहचरी प्रेयसी किन्नरी का मधुर संगीत सुन रहे थे। उन्होंने हँस कर कहा—क्या खूब ! सहला दो न, ये मोती बन जायँ !

किन्नरी ने अपने अर्धोन्मीलित नेत्रों से एक बार उन्हें और एक बार मैना की ओर देखा। मैना मानों दाद देने के स्वर में बोल उठी—हाँ किन्नरी रानी !

महाराज हँस पड़े। किन्नरी के हृदय में जैसे किसी ने शब्द-वेधी बाण मार दिया हो, वह तलमला उठी। पिंजड़े को उठा कर उसने जमीन पर पटक दिया। डर के मारे पिंजड़े के एक भाग से लिपट कर मैना महाराज की ओर कातर दृष्टि से देखने लगी।

इसका इतना कौन सा कसूर था—किन्नरी ! बेचारी डर के मारे कांप रही है।—महाराज ने दयार्द्र होकर कहा।

किन्नरी चुप रही। मानों किसी भावावेश में आकर उसने ऐसा कर दिया था। अब वह अपनी कृति पर स्वयं लज्जित हो रही थी। जितना ही वह इसे सोचती और समझती थी, उतनी ही उसे मार्मिक व्यथा होती थी। उसके नारी-हृदय की समस्त लज्जा आज मानों अनायास ही फूट कर उसे जकड़ रही थी ! उसी के बीच वह खड़ी होकर भगवान से कह रही थी—तुम विधि-विधान से यदि इस घटना को लोप कर सकते ! उसके न होने के समान ही विस्मृत कर देते तो आह……!—उसका हृदय दूध की तरह उतराया आ रहा था।

किन्नरी के क्षुब्ध हृदय की अवस्था महाराज से छिपी न रह सकी। वह सोचने लगे—मैना ने कुछ ऐसा तो नहीं कहा था जो किन्नरी के लिये असह्य होता ! किन्नरी यदि राजमहिषी नहीं,

तो उसके लिये इसका अभाव भी नगण्य है, इसमें सन्देह नहीं। और फिर उसे दुःख ही किस बात का है?—इस विश्वास ने उनके दुःख को कम कर दिया।

सरल हृदय महाराज ने किन्नरी की ओर देखा। वह एक साधारण-सी घटना से सन्ध्या कालीन पद्मनालसी झुकी खड़ी है। उनका हृदय यह देखकर दुखी हुआ। उन्होंने किन्नरी को पकड़ कर अपने पास खींच लिया। वह सिसक रही थी। उसकी आँखों से अश्रुजल मलयानिल के मृदुल स्पर्श से पारिजात पुष्प की नाईं टपाटप झड़ रहा था। सुन्दर मुख का रोना भी अद्वितीय सुन्दरता की सृष्टि करता है! महाराज सब कुछ भूल कर भी इस अस्वीकृत आनन्द में लीन हो गये। किन्नरी रो रही थी, महाराज देख रहे थे। उसकी सिसकियों ने उन्हें मानों ठोकर मार कर सचेत कर दिया। वे बड़े करुण स्वर से स्नेहातुर होकर कहने लगे—तुम्हारे रोने का क्या कारण है किन्नरी? मैं तो बहुत सोच कर भी कुछ नहीं समझ पाता?—महाराज उत्तर की प्रतीक्षा में चुप हो गये।

चौबीस घंटे मस्ती का जीवन बिताने वाले महाराज के मुख पर इस असुन्दर गम्भीरता को देख कर भी आज किन्नरी हँस न सकी; बल्कि उनकी निश्छल बातों को सुनकर उसका हृदय और भी हिम की भाँति पिघल उठा। वह और अधिक रोने लगी। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

तुम्हारी यह व्याकुलता कितने लड़कपन से भरी हुई है, किन्नरी!—फिर महाराज ने रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा।

किन्नरी वाताकुल मंजरी की भाँति काँप रही थी। महाराज

ने उसे अपनी गोद में खींच लिया। उनका हृदय सहानुभूति से भर रहा था। उन्होंने उसके मुख पर आँखें गड़ा कर बड़ी सरलता से कहा—तुम कैसी अबोध हो !

किन्नरी मानो अपने हृदय के सम्पूर्ण सत्य को एकत्र कर उत्तेजनापूर्ण स्वर में किन्तु संकोच के साथ बोल उठी—नहीं, मैं बड़ी पापिनी हूँ महाराज, मुझे क्षमा कीजिये।—वह मानो लज्जा से पीली पड़ गई थी।

महाराज ने अविश्वास से हँस कर निकट रखा हुआ पान-पात्र उसके मुँह से लगा दिया। वह अनिच्छापूर्वक पीने लगी। थोड़ी देर के बाद ही उसका सारा विषाद तिरोहित हो गया। सीपी के भीतरी झलक-सा वर्ण, उत्फुल्ल मृदु पाटल प्रसून से आरक्त युगल कपोल और शतदल की नीली पँखुरियों-सी आँखें—विश्वकवि के उपमेय-सी दीखने लगीं। अलकों में शीतल समीर उलझने लगा। किन्नरी पुनः गुनगुनाने लगी—

सुधा सीकर से नहला दो !
लहरें डूब रही हों रस में,
रह न जायँ, वे अपने बस में,
रूप-राशि ! इस व्यथित,
हृदय-सागर को बहला दो !

महाराज आत्मविस्मृत से हो रहे थे और मैना पिंजड़े में दोनों आँखें मूँदे मौन थी।

पहाड़ियों पर सोती हुई चाँदनी, सौरभ से मतवाला प्रदेश,

अस्रविणी की कल-कल ध्वनि, रमणीय प्रकृति के हृदयहारी दृश्य, सभी उस विलास-भवन के अनुकूल उपकरण थे। किन्नरी इसी प्रमोद-उद्यान में रात्रि-विश्राम करती है। वह सोई हुई थी। पगली प्रकृति का यौवन मदिरा से अलसाया हुआ अँगड़ाई ले रहा था। रात्रि के तीन चरण बढ़ चुके थे। कदम्ब नीड़ पर से श्यामा का सुन्दर आलाप पवन-लहरी को विकम्पित करता अन्तरिक्ष में विलीन हो गया। किन्नरी ने करवट बदलते हुए आँखें खोल दीं। देखा—सामने का पलँग अभी भी सूना पड़ा था।

महाराज अभी तक महल से नहीं आये थे। वह हँसते हुए चन्द्रमा को देखने लगी। उसकी अलसाई हुई आँखों में सपने का भय था और थी विषाद की रेखा। मौन साधना अपरिचित की भाँति संकुचित हो चली। रात्रि की बजाई वीणा पास ही पड़ी थी। किन्नरी ने उसे उठा लिया और धीरे-धीरे भैरवी बजाने लगी। कितनी ही तानें मूर्च्छना में पड़ी काँप रही थीं। किन्नरी ने श्रान्ति का अनुभव किया, अङ्गुलियों ने विश्राम चाहा। सहसा किसी की पदध्वनि सुनाई पड़ी। युवती ने आँखें उठाकर देखा—एक युवक उसी की ओर क्रमशः बढ़ा आ रहा है। उसने वीणा उठाकर एक ओर रख दी। उसकी सतर्क दृष्टि युवक की प्रतीक्षा करने लगी। युवक लहरों की तरह आकुल गति-से बढ़ता समीप आ रहा था। युवती निष्प्रभ होकर बोली—तुमने चोरों की तरह यहाँ आने की धृष्टता क्यों की? मैंने तो तुम्हें तभी सब कुछ भूलकर लौट जाने के लिये कहला दिया था, फिर क्यों आये? क्या तुम्हें परिणाम का ध्यान नहीं है?

युवक यह सुनकर चुप रह गया। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में आँसू की बूँदें 'अधखुली सीपी में मुक्ता' के समान सुन्दर

स्पष्ट दिखलाई पड़ती थीं। कदाचित इसी को लक्ष्य कर युवती भी अन्तिम वाक्य पूर्ण करते करते आर्द्र हो गई थी। युवती ने अपने कण्ठ को कोमल करके कहा—तुम लौट जाओ, यही तुम्हारे लिये अच्छा होगा, और कदाचित इसी से मुझे भी शान्ति मिलेगी।—उसका गला रुँध चला था।

कहाँ लौट जाऊँ? आज यह निष्ठुर परिहास क्यों?- युवक ने जिज्ञासा की।

व्यंग की आवश्यकता नहीं। यह परिहास नहीं, परिस्थितियों का बन्धन—समाज की बेड़ी है मोहन! तुम लौट जाओ। जानते नहीं, सिर पर काल नाच रहा है, अब देर न करो, शीघ्र चले जाओ।—युवती ने सोची हुई बातों की तरह सब कह डाला। उसकी वेणी शिथिल होकर छूट पड़ी थी।—युवक ने देखा।

युवक का नाम मोहनसिंह था। उसकी सौम्यमूर्ति उसकी विशिष्टता की घोषणा कर रही थी। स्वर्गीय स्वप्नों का यान उसे उड़ाये लिये जा रहा था। किन्नरी ने वहीं आघात किया। मर्म-व्यथा से पीड़ित होकर उसने उत्तर दिया—सब बन्धनों को तोड़ कर किसी निरापद स्थान में सुखपूर्ण जीवनयापन करने ही को तो तुमने मुझे निमन्त्रित किया था? फिर उसमें संकोच क्यों? सुन्दरी! मेरी पीड़ा से तुम खेल न करो। यह बड़ी कठोर क्रीड़ा है, असह्य यन्त्रणा है, सच कह दो, मैं तैयार होकर आया हूँ।—युवक का कुम्हलाया मुख बड़ा दयनीय हो गया था।

नहीं,—वह मुझसे नहीं होगा, तुम लौट जाओ। मेरी भूल थी, क्षमा करना।—किन्नरी ने आवेग भरे हृदय को दबाकर उत्तर दिया। उसकी आँखें भर आई थीं।

युवक ने देखा—किन्नरी श्रावण की पूर्णिमा की तरह जल, मेघ और प्रकाश के एकत्र समावेश से अद्भुत सौन्दर्यशालिनी हो रही है। वह पागलों-सा प्रलाप करने लगा—झूठ न बोलो, इस सुन्दर मुख को देखकर मुझे विश्वास नहीं होता कि तुम यह सच कहती हो। कह दो—चलूँगी—चलती हूँ।—युवक की व्यग्रता सरलता से भरी हुई थी। वह कह रहा था—तुम्हीं ने मेरे अन्धकार पूर्ण हृदय में प्रकाश की किरण फेंकी है, मेरे ऊजड़ ग्राम में स्वर्ग की रचना की है। मेरी अनन्त आशाओं में तुम्हारे लिये प्रेम निमंत्रण है, मेरी अपरिमित वासनाएँ तुम्हारी स्मृति में—जीवन में—बँध रही हैं, मेरी विपुल कल्पनायें तुम्हारी प्रार्थना कर रही हैं। प्रियतमे, आह······!

युवक ने देखा—किन्नरी उसके चरणों में गिरी ढाढ़ें मारकर रो रही है। वह अधीर हो उठा। किन्नरी को उठाकर उसने अपने बलिष्ट बाहुपाश में आवद्ध कर लिया।—मैं सतत अनुगत रहूंगा—तुम रोओ न, किन्नरी!—सरल हृदय युवक ने कहा।

किन्नरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसका हृदय अबोध युवक की कातर उत्सुकता से दबा जा रहा था। उसने युवक की बातें सुनकर आँखें खोलीं। देखा, सामने महाराज खड़े हैं। वह चौंक कर दूर जा खड़ी हुई! युवक ने भी पीछे मुड़कर महाराज को देखा।

एक क्षण में एक आघात से छिन्न-मस्तक युवक भूमिपर लुण्ठित होने लगा। युवती भयत्रस्त होकर काँपने लगी। उसकी आँखें बन्द थीं। दूसरा आघात न हो सका, हाथ कँपा, तलवार

झनझना कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर महाराज ने किन्नरी की ओर देखा भी नहीं, वे लौट पड़े।

किन्नरी ने भी देखा—वे लौट पड़े। शिरश्छिन्न मोहन रक्तमय होकर जमीन पर पड़ा है। किन्नरी चीखकर बेहोश हो गई। सचेत हुई—फिर मोहन को देखा, अतीत उजला हो गया—वह चिग्घाड़ मारकर रोने लगी। लज्जा नहीं, संकोच नहीं, हृदय का क्रन्दन अविरल जलधार बहा रहा था। मोहन! तुम एक बार उठकर देखते क्यों नहीं? किन्नरी रोम-रोम से तुम्हारे लिये रो रही है। तुम्हारे लिये अपना सब कुछ लिये बैठी है। क्यों, तुम उठ सकोगे? सौभाग्यपूर्ण अभागे, तुम न उठो! किन्नरी जन्मभर रोवेगी—रोये, ...तुम्हें क्या!...।—किन्नरी बूँद-बूँद बन गल रही है!

उसने मन में सोचा—मैं भी मर जाऊँ?

झंझावात के प्रबल झटके-सा कड़क कर उसके मन में जैसे किसी ने कहा—आज नहीं।

उस दिन से फिर महाराज उस उद्यान-भवन में नहीं आये। यद्यपि किन्नरी को उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा, पर ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगा वह अपने को कैद में समझने लगी। यह उसके लिये असह्य था।

पूर्व के प्राङ्गण में ऊषा चमकने लगी थी। बहुत दिनों की पालतू मैना पिंजड़े को खुला पाकर सामने छज्जे पर जा बैठी थी। प्रभात-वायु धीरे-धीरे डोल रहा था। किन्नरी ने नीचे का

किवाड़ खोल कर देखा, शून्य उपवन में प्रभात प्रणय-शून्य हृदय की तरह शान्त और अनुद्विग्न था। उसका चोट खाया हुआ हृदय अपनी पीड़ा का अनुभव करने लगा। वह बगीचे के बाहर पथ पर आ गई। नगर से दूर—इधर निम्नश्रेणी के लोगों की बस्ती थी।

दो तीन लड़के एक हिरन के बच्चे के पैर में रस्सी बाँध कर खेल रहे थे। बेचारा हिरन विस्फारित नेत्रों से सामने की विस्तृत भूमि को देख रहा था; पर भाग न सकता था।

किन्नरी ने इसे देखा—बालकों की सरल हँसी में उसका अस्थिर मानस कुछ क्षण के लिये शान्त-स्निग्ध हो गया। वह रुक गई।

बच्चों ने डर से हिरन को छोड़ दिया और आपस में एक दूसरे का मुँह देखने लगे। एक छोटे बच्चे ने चिल्ला कर कहा—अरे वह तो भागा जाता है।—बालक उसी ओर देखने लगे।

किन्नरी उस बालक की सरलता पर मुग्ध हो कर आँसू गिराने लगी। उसे जब चेत हुआ, आगे बढ़ी। सामने कुएँ पर एक साधु पथिक को विश्राम करते देख, उनसे जल की याचना की, उसे प्यास लगी थी। साधु ने उसे जल निकाल कर पिला दिया। जल पीकर वह भी वहीं बैठ गई।—कहाँ आई हूँ और कहाँ जाना होगा?—यह नवीन प्रश्न उसके मन में उपस्थित हुआ। वह सोचने लगी।

साधु उसकी ओर ध्यान न देकर यात्रा की तैयारी करने लगा। बिखरी चीजें इकट्ठी हुईं, गठरी बँधी। वह जब चलने

को उद्यत हुआ, तब किन्नरी ने धीरे से पूछा—कहाँ जाइयेगा, महाराज ?

मैं काशी जाऊँगा, माँ जी !—साधु ने बिना उसे देखे ही उत्तर दिया।

किन्नरी फिर कुछ न बोली। वह भी यात्री है, साधु ने यही समझा। दोनों एक ही पथ पर जाने लगे।

किन्नरी अपने को स्वतन्त्र कर चुकी थी।

ग्यारह वर्षों के बाद।

"गर्भ से ही सत्ता का उपभोगी, यौवन की पहिली सीढ़ी पर उपेक्षित होकर प्रतिहिंसा की मूर्ति बन बैठा। हृदय में जलन थी, होठों पर घृणा, फिर भी सांसारिक जीवन में विजयी बनने की लिप्सा से राजा ने प्रतिवर्ष नवीन ब्याह करने की क्रिया आरम्भ की। इस तरह उनकी कई शादियाँ और हुईं।"—किन्नरी, जो दूर बैठी बालों को धूप-छाँह में सुखा रही थी, अन्तिम वाक्य सुन कर सतर्क हो गई। वह चैतन्य की ओर देखने लगी। चैतन्य समाचार-पत्र का एक बहुत पुराना टुकड़ा लिये पढ़ रहा था—

"प्रणय की चोट प्राणों से खेलती है। जीवन भार हो जाता है—सुख अभिशाप और ऐश्वर्य अपवाद ! राजा भीतर ही भीतर गल कर साहसिक बन रहे थे। वह एक दिन शिकार खेलने के लिये किसी दूर के जंगल में गये, साथ कोई भी न था। कई दिनों के बाद केवल उनका घोड़ा लौट आया। उसकी आँखों से

जलधारा बह रही थी। लोगों को सन्देह है कि किसी मार्मिक घटना ने राजा साहब को आत्महत्या करने के लिये बाध्य किया!"

चैतन्य चुप हो गया, इसके आगे पढ़ने ही को कुछ न था।

किन्नरी उठ खड़ी हुई, उसके सोये हुए हृदय में एक तूफान जाग उठा था। वह मतवाली सी हो गई थी। चैतन्य के हाथों से उस टुकड़े को लेकर उसने पूछा—इसमें क्या लिखा है जी! मैं भी देखूँ।—वह टुकड़े को लेकर देखने लगी।

इन्हीं टुकड़ों में बाजार से सौदा आया था। इसे क्या करोगी, छोटी दी? चैतन्य ने किंचित हँस कर दुलार से पूछा।

कुछ नहीं, देखूँगी कि तुम क्या पढ़ रहे थे।—कहते हुए किन्नरी अनावश्यक रीति से उस टुकड़े को लिये अपने स्थान की ओर चली गई।

किन्नरी राज सम्मान को परित्याग कर जिस दिन अपनी उस विश्राम अट्टालिका से दूर हुई थी, उसके कुछ ही दिनों बाद यहाँ पहुँच कर शान्त चित्त से ईश्वराराधना करती है। यह दक्षिणियों का मठ है। दो-चार वृद्ध साधु सदैव यहाँ निवास करते हैं। भण्डारी का एक गृहस्थ परिवार भी मठ में सम्मिलित था। किन्नरी इन्हीं लोगों के बीच आश्रय पा गई थी। पूजोपरान्त वह दिव्य कण्ठ से भगवान शंकर को गान सुनाती, यही उसके भक्ति का भाग था। चैतन्य उसमें रहने वाले परिवार का लड़का था। सहज विनोदशील बालक किन्नरी को 'छोटी दी' कहा करता था। जब किन्नरी वहाँ से चली गई, तब वह भी उठ कर चला आया।

सूर्य पश्चिम में धँस रहा था। किन्नरी घाटों ही घाट विश्वनाथ जी जा रही थी। इधर दो-तीन दिनों से उसका हृदय नादान शिशु-सा बहलाने पर भी बहलता ही न था। दुर्बल जीवन में इतना बोझ क्रूर विधाता का अभिशाप नहीं तो क्या है? जिसे भूल जाने के लिये—मिटा देने के लिये—वह अचैतन्य होकर मिट रही थी, उसी की इतनी प्रलयंकरी क्रीड़ा! उसके पैर असंयत पड़ रहे थे। भिखारी के बच्चे ने कहा—माँ जी कुछ दिये जाओ, बड़ी भूख लगी है।—वह आशा से हाथ फैलाये सामने खड़ा हो गया।

छोटी सी थैली से कुछ निकाल कर किन्नरी ने धीरे से उसके हाथ पर रख दिया और आगे बढ़ी।

उस बच्चे ने पुलकित हो कर एक रुग्ण भिखारी को दूर ही से पुकार कर कहा—दादा! रुपया मिला है, देखो!

खाँस कर दूर वाले भिखारी ने कहा—हाँ रे, इधर आ! माँ जी का सुहाग सदा अचल रहे।—अपनी अन्तरतम की करुणा से वह द्रवित हो गया था। तब तक किन्नरी दूर चली गई थी।

साधु एक ऊँची बुर्जी पर से गिर पड़ा था, दो-चार लोग उसे घेरे खड़े थे, एकाध उसे होश में लाने के लिये हवा कर रहे थे। किन्नरी भी दर्शक की भांति उधर घूम पड़ी। साधु तब तक बेहोश था। चोट, लोगों ने अनुमान किया, अधिक लगी है; अतः कुछ लोग अस्पताल पहुँचाने के लिये चिन्तित थे। किन्नरी ने साधु को देखा—वह आँखें खोल रहा था। उसने अभी पीड़ा का अनुभव नहीं किया था।

किन्नरी ने सान्त्वना पूर्ण स्वर में उस साधु से पूछा—क्या चोट अधिक लगी है ?

वह कुछ न बोला। केवल अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से उसे देखने लगा। वह दृष्टि किन्नरी के हृदय में लुकने-छिपने लगी। वह शंकित हृदय अधीर हो उठी। साधु फिर बेहोश हो गया। किन्नरी बड़े प्रेम से उसकी सेवा में लग गई। उसके सारे भाव सेवा में स्थिर होकर बँधने लगे।

आह ··· किन्नरी ··· प्यास—!—अस्पताल में तीसरे दिन साधु ने कमजोरी की बेहोशी में कहा।

किन्नरी की आँखों में आँसू की बूँदें दौड़ पड़ीं। उसने बहुत दिनों पर प्यार के भूखे प्रियतम से सम्बोधन पाया था। पाँच-छः चम्मच दूध उसने धीरे-धीरे साधु को पिलाया। उसकी बन्द आँखें खुल पड़ीं। सामने अविरत सेवारत किन्नरी, चिर प्रेममय किन्नरी—हृदय की अधिष्ठात्री किन्नरी को उसने देखा, सतृष्ण आँखें फिरती ही न थीं। उसने अपनी विशाल बाहें फैला कर उठने की चेष्टा की, पर व्यर्थ। बाहें झुक पड़ीं—नीरव प्रार्थना मुँह पर नाच रही थी।

किन्नरी ने और समीप होकर कहा—अभी न उठिये, पीड़ा और अधिक होगी महा···!—धड़कता हुआ कलेजा मुँह को आ लगा। आगे वह कुछ बोल न सकी।

पीड़ा न होगी। मुझे एक बार उठा कर बैठा दे। आह! ईश्वर तुझे मेरे सारे अपराधों को भूल कर क्षमा करने की शक्ति दें।

हाय किन्नरी ! मैं किसी को भी सुखी न कर सका ।—महाराज शोकाधिक्य से कातर हो उठे, उनके आँसू की लड़ियाँ तीव्र गति से टूट रही थीं ।

किन्नरी ने अपने को सम्भाल कर कहा—चरणों की दासी भी न होने योग्य इस अभागिनी को आपने क्या नहीं दिया था। हाय ! मुझसे उसका भी तिरस्कार हुआ ! मैं परमेश्वर को कौन-सा मुँह दिखाऊँगी ? इसी लाज से मर भी न सकी ! मुझ अनाथिनी के नाथ ! तुम्हीं मेरे भगवान हो मुझे क्षमा करना ।—किन्नरी चरणों में गिर कर रोने लगी ।

अब वे लेटे न रह सके, अपनी सारी शक्ति बटोर कर उठ बैठे । भयविह्वल किन्नरी काँप उठी । महाराज ने उसे खींचकर आलिङ्गन कर लिया । उन्होंने कहा—किन्नरी ! मैंने तुझे कितना प्यार किया था, जानती है ? अभागिनी···आह······!

खून की एक जबरदस्त कै होने से वे लड़खड़ा कर गिर पड़े ।

तोता

जवाहर लाल की जय—मलका के आकर खड़े होते ही पिंजड़े का तोता पुकार उठा।

मलका ने हँस कर उल्लास से पूछा—नमक-कानून ?

तोड़ डाला—जोर से पिंजड़े में झुक कर मलका के मुँह को देखते हुए तोते ने कहा।

मलका बाहर बैठक से पढ़ कर अभी लौटी थी। वह जरा साँवले रङ्ग की लड़की, पाँव में कामदार लाल मखमल की चट्टी, काले रङ्ग का सुन्दर लहँगा-पहने, ऊपर हल्के धानी रङ्ग का दुपट्टा ओढ़े वह बड़ी भोली मालूम पड़ती थी। उसकी नाक की सोने की छोटी सी नथनी और कान की बालियाँ उसके साथ

दाई ने देखा, मलका पढ़ कर आते ही तोते से उलझ गई। उसने झुंझला कर कहा—बेटी, पहले नाश्ता कर लेती। तू तो दिन-रात एक यही खेल लिए बैठी रहती है।

आई झाला बीबी—मलका ने पिंजड़े के पास से हट कर कहा। दाई का नाम झाला था।

एक दिन हुजूर तुझ पर जरूर नाराज होंगे? आगन्तुक-भय का नाट्य दिखलाते हुए झाला ने कहा—मैं तो यही सोच कर मरी जाती हूँ। तू मानती ही नहीं।

मलका ने तिनक कर कहा—ओह, मैं कब से खड़ी हूँ! तू नाश्ता लेकर आती भी तो नहीं। अब्बा इस पर नहीं बिगड़ेंगे?

नाश्ते की तश्तरी लेकर आते हुए झाला ने देखा—मलका अब भी हाथ में किताबें लिए खड़ी है। अभी उन्हें रखने की भी उसने कोई चेष्टा नहीं की। इस पर झाला ने नाराज होकर कहा—वाह री मलका! कब से तैयार खड़ी है? जो मुझे डाँटती है?

देख मैं तो तैयार हूँ झाला बीबी—कापियाँ एक ओर फेंकते हुए मलका ने हँस कर कहा—आ बैठ, देख—मैं बैठी हूँ। तू अपने ही हाथ से मुझे खिला दे—कह कर मलका वहीं एक चटाई पर बैठ गई।

झाला छोटे-छोटे नवाले उसे खिलाने लगी। मलका अब भी जब जी में आता, प्रसन्न होती, या झाला को खुश करना होता, तो ऐसे अवसर पर उसे खाना खिलाने के लिए कहती और कभी-कभी तो केवल उसे तङ्ग करने ही के लिए वह ऐसा करती। खाना खाकर आज वह शान्तिपूर्वक बैठी मन की साधारण

प्रेरणा के वशीभूत होकर धीरे, अर्धस्फुट स्वर में, स्वयंसेवकों का गान गुनगुनाने लगी।

हम सरे दार वसद, शौक जो घर करते हैं;
ऊँचा सर कौम का हो, सर ये नजर करते हैं!

सूख जाए न कहीं, पौदा ये आजादी का।
खून से अपने इसे, इसलिए तर करते हैं!

अषाढ़ मास प्रारम्भ हो चुका था। क्षितिज के बादलों का जमघट चिर-सुप्त भारत के आन्दोलन का भयङ्कर और विराट रूप उद्वेलित कर रहा था। देश का एक-एक बच्चा क्रान्तिकारी सत्याग्रही हो गया। कल और आज का अन्तर विद्वानों के लिए अध्ययन की चीज हो गई थी। मलका सब कुछ देखती। वे दृश्य रहस्य बन कर उसके मन से उलझ जाते। वह बैठी कसीदा काढ़ रही थी।

मलका! क्या कर रही है?—एक सुन्दर बालक ने भीतर प्रवेश करके कहा।

अरे, हनीफ भैया! तुम इलाहाबाद से कब आए?—मलका ने कसीदे से अपना ध्यान हटा कर आश्चर्य से उससे पूछा।

पाँच-छः दिन हुए मलका—हनीफ ने उत्तर दिया।

हनीफ उसके मामू का लड़का था। उसके मामा इलाहाबाद में रोजगार करते थे और हनीफ वहीं पढ़ता था।

कोई छुट्टी पड़ गई क्या ?—हाथ की चीजें एक टीन के डब्बे में रखते हुए मलका ने प्रश्न किया।

छुट्टी तो नहीं है, पर स्कूलों पर धरना दिया जा रहा है। ऐसी हालत में कोई कैसे पढ़ने जा सकता है।

क्यों हनीफ ! ये पढ़ने से क्यों रोकते हैं ?—मलका ने बड़ी गंभीरता से पूछा।

तुम यहाँ देखती नहीं हो मलका ! लोग आजादी के लिए पागल हो रहे हैं। जब मर मिटेंगे, या आजाद होंगे—का निश्चय हो चुका हो तब विद्यार्थियों का पढ़ने जाना, उनका अज्ञान है न ! इसी शर्म से हमें बचाने के लिए ही तो वे सब यह कर रहे हैं मलका !—हनीफ ने रटी हुई कविता की तरह सब एक साँस में कह कर मलका की ओर देखा।

मलका कुछ बोली नहीं। वह जैसे ठीक समझ नहीं रही थी। पर उसकी बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी। यही देख कर हनीफ फिर से कहने लगा—मलका ! इलाहाबाद में बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ स्कूलों पर धरना देती हैं। पण्डित जवाहरलाल की स्त्री, बहन, माँ, हाँ—उनकी छोटी लड़की—बस तुम्हारी इतनी है, मैं क्या कहूँ, स्मरण कर मेरे रोएँ खड़े हो जाते हैं—धरना देती हैं। मैंने अब्बा से कह कर स्कूल जाना इसी लिए बन्द कर दिया।

हाँ—मलका का जैसे ध्यान टूटा, उसने जोर से पूछा—तुम इस साल न पढ़ोगे हनीफ ?

नहीं मलका—हनीफ ने कहा—मैं तो इसमें कुछ काम भी करना चाहता हूँ।

अब्बा सुनेंगे तो नाराज न होंगे हनीफ ? और तुम जेल जा सकोगे ??—मलका ने चिन्तित होकर पूछा ।

क्यों न जा सकूँगा ? जब जवाहरलाल ऐसे लोग जेल जा सकते हैं, तो क्या मैं उनसे भी सुकुमार हूँ ?—बालक ने तेजी से कहा । उसका चेहरा दीप्त था ।

जवाहरलाल !—बालिका ने बड़ी उत्सुकता से कहा । फिर कुछ सोच कर पूछा—वे कैसे हैं हनीफ ? तुमने देखा है ?

ओह...... मैंने उन्हें कई बार देखा है, मलका ! उनकी वे बड़ी-बड़ी आँखें, तेज से भरा मुख-मण्डल एक अव्यक्त वेदना से झुलस कर बड़ा करुण हो गया है । आह वे बड़े सुन्दर हैं । करोड़पति अमीर होकर भी वे गरीबी की पूजा करते हैं । चने खाकर ही दिन बिता देना और फटे कपड़े पहने रहना, उन्हें जरा भी नहीं अखरता ।

बालिका चुपचाप सुन रही थी । उसके हृदय में एक दर्द, एक चित्र अपनी छाया डाल रहा था, वह व्याकुल हो गई । उसने पूछा—उन्हें बड़ा कष्ट होगा, क्यों भैया ?—उसकी आँखें भर आई थीं ।

नहीं मलका, वे बड़े प्रसन्न हैं, अपनी जान भी देश के लिये वे हँसते हुए दे सकते हैं—कह कर हनीफ ने एक लम्बी साँस ली और कहा—अब चलूँ मलका ! आज अब्बा को एक खत भी लिखना है ।

यहीं खाना खाकर जाना हनीफ !—मलका ने स्नेह से कहा ।

नहीं मलका, जाने दो । कई काम हैं—कह कर वह उठ पड़ा ।

मलका भी उसी के सङ्ग उठ खड़ी हुई ।

प्रभात की स्वर्ण-किरणों से कोतवाली का वह प्राचीन पीपल का वृक्ष नहा उठा। उसका एक एक पत्ता नाच रहा था। हर-हर की मधुर ध्वनि उसके संगीत की तरह पवन में प्रकम्प उत्पन्न कर रही थी।

स्थानीय कांग्रेस कमेटी ने आज कोतवाली के सामने नमक-कानून तोड़ने का निश्चय किया था। ठीक समय पर टिड्डी-दल की भाँति लोगों का समूह राष्ट्रीय झण्डे के नीचे उल्लास से गान गाते हुए आने लगा। थोड़े ही समय में राष्ट्रीय संगीत की लहरी आकाश को व्याप्त करने लगी।

मलका उधर बरामदे में पढ़ रही थी, उसके कोमल हृदय में उत्पात मचने लगा। उसने अपने वृद्ध मास्टर से कहा—मास्टर साहब, सर में बड़ा दर्द हो रहा है—कह कर उसने पढ़ने से छुट्टी चाही।

जाओ मलका, चुपचाप सो रहो—कह कर उन्होंने छुट्टी दे दी। बाहर के कोलाहल और एक आगन्तुक-भय की आशङ्का से वे सहम गए। सब की आँख बचा कर वे चले गए।

मलका के सर में दर्द नहीं था। वह कोतवाली के ऊपर बाहर वाले कमरे की खिड़की में बैठ, एकत्रित जन-समूह को देखने लगी।

सहसा नमक बनाने वालों का जत्था अधिनायक के साथ आता दीख पड़ा। उनके गान को स्वयंसेवक दुहराते हुए धीमी गति से चले आ रहे थे।

बना कर कुटिया स्वतन्त्रता की,
सपूत जेलों में रम रहे हैं।

निकल के देखेंगे वे तपस्वी,
स्वतन्त्र भारत, स्वतन्त्र भारत !

मलका के हृदय के समस्त तार झनझना उठे—स्वतन्त्र भारत, स्वतन्त्र भारत !

उपस्थित लोगों ने बढ़ कर उस जत्थे का स्वागत किया।

भारत-माता की जय।

मलका भी धीरे से कह उठी—भारत-माता की जय।

कोतवाली की चहार दिवारी से सटी हुई पटरी और सड़क पर गिट्टियाँ बिछी थीं। सड़क की मरम्मत हो रही थी। उसी पर स्वयंसेवक डट कर बैठ गए। ईंटों को जोड़ कर चूल्हा बनाया और उसी पर उन्होंने कड़ाही चढ़ा दी। नमक बनाना प्रारम्भ कर दिया। कोई भय नहीं, कोई सङ्कोच नहीं। पचास-साठ पुलिस के जवान कोतवाली के हाते में खड़े यह दृश्य देख रहे थे। उनकी सत्ता को तुच्छ कर स्वयंसेवक—महात्मा गाँधी की जय, भारत माता की जय—और—नमक-क़ानून तोड़ो—का घोष जोरों में कर रहे थे।

कड़ाही छीन लो—कोतवाल ने अपने सिपाहियों को आदेश दिया।

सिपाही स्वयंसेवकों के दल पर टूट पड़े। कड़ाही डण्डे से मार कर गिरा देनी चाही, पर स्वयंसेवक वहाँ प्राण टेके अड़े थे। हाथा-पाई शुरू हुई। पुलिस बलप्रयोग कर कड़ाही छीन लेने की चेष्टा करने लगी। किन्तु स्वयंसेवक यों ही उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। पूरी दलबन्दी कर उसकी रक्षा में सचेष्ट थे।

कोतवाल को क्रोध आ गया। उसने यह दृश्य ही न देखा था, कि दस छोकरे पुलिस की अवज्ञा कर मनमानी करें। वह हण्टर लिए उनमें घुस पड़ा और एक की कलाई पर उसके डण्डे से ऐसी चोट मारी कि बेचारा तिलमिला उठा। फिर भी उसने कड़ाही नहीं छोड़ी।

कोतवाल ने सिपाहियों को ललकारा। डण्डे पर डण्डे पड़ने लगे। स्वयंसेवक घायल होने लगे। किसी के कलेजे पर, किसी की छाती पर चोटें लगने लगीं। कितनों ही के खोपड़े लहू-लुहान हो गए। उसी समय एक सिपाही कड़ाही लेकर कोतवाली को ओर भाग आया।

मलका देख रही थी। वह देखती थी, कि इतनी मार पड़ने पर भी सब स्वयंसेवक छाती ताने अविचलित भाव से अड़े हैं। उसे क्रोध आ गया। उसने धीरे से कहा—अब्बा इन्हें क्यों मारते हैं?—उसका कोमल हृदय विद्रोही भावनाओं का केन्द्र बन गया। छोटी सी बालिका आँखों में आँसू भरे बैठी थी।

कितने ही स्वयंसेवक और दर्शक घायल हुए पर उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के दूसरी कड़ाही चढ़ा कर नमक बनाना प्रारम्भ कर दिया।

पुलिस ने तीन बार लाठी के बल पर स्वयंसेवकों से नमक की कड़ाही छीनी। सभी स्वयंसेवक चिकित्सालय पहुँच चुके थे। किन्तु जनता ही में से दूसरे लोग आकर फिर से नमक बनाना प्रारम्भ कर देते थे। बिना नमक बनाए वहाँ से हटना उनकी हार थी।

चौथी बार पुलिस को हस्तक्षेप करने की हिम्मत नहीं पड़ी।

सारा शहर उमड़ कर कोतवाली के सामने प्रस्तुत था। पुलिस सत्याग्रह का मुख्य उद्देश्य—अहिंसा जान कर भी भय-त्रस्त हो रही थी।

नमक तैयार हुआ। स्वयंसेवकों ने अपार हर्ष का अनुभव किया। सब नमक जनता में वहीं बाँट दिया गया। लोगों ने बदले में रुपयों से उनकी थैलियाँ भर दीं।

मलका चाह कर भी वह नमक न पा सकी।

रुई के पहल की तरह छोटे-छोटे सफेद बादल तमाम आकाश में सूर्य की सान्ध्य किरणों से लिपट कर सुनहले चँदवे की तरह पृथ्वी के ऊपर फैले थे। किन्तु मलका के लिए आज उसमें कुछ भी आकर्षण न था।

कोतवाली में आज दो-चार सिपाहियों को छोड़ कर कोई भी न था। मुन्शी अपना काम अलग कर रहे थे। झाला किसी काम से बाजार गई थी। नौकर मलका के कमरे को पानी से साफ कर रहा था वह ऊपर चली आई थी।

मलका का हृदय कल ही से व्याकुल था। उसने उन निरीह स्वयंसेवकों को मार खाते देखा था, जो शान्तिपूर्वक नमक बना रहे थे। नमक बनाने के मूल में जो रहस्य था, उसे वह न जानती थी। किन्तु उसके पिता की निष्ठुरता उसके कोमल हृदय में पके फोड़े की तरह कष्ट पहुँचा रही थी। उसी दर्द के कारण न जाने कब से वह बड़ी अन्यमनस्क थी। कोई ऐसा न मिला जिससे वह दिल खोल कर बातचीत करती। हनीफ आया ही नहीं। और

उसके पिता इधर कई दिन से उसे प्यार भी न कर सके थे। आज यदि वे उसका प्यार भी करते, तो वह भय और सङ्कोच से उनके समीप खड़ी रह कर केवल एक कठोर आघात की तरह उसे सह लेती। आज उसका हृदय उनके विरुद्ध प्रज्वलित हो उठा था। कल जब दोपहर के बाद वे अधिनायक को पकड़ कर कोतवाली ले आए उस समय सारी जनता, उनका कितना अपमान कर रही थी! वही उसके पिता हैं? सोचते-सोचते वह उद्विग्न हो उठी। वह टहलने लगी।

आज से नगर में १४४ दफा जारी कर दी गई थी। उधर सभा की घोषणा थी। उसे रोकने का पूरा इन्तिजाम था। इसी से मलका रह-रह कर कुछ सोचने लगती थी। वह चाहती थी, कि कहीं उसके अब्बा दिखलाई पड़ जायँ, तो वह उनका पाँव पकड़ उनको आज मार-पीट करने से रोक ले। वह अपने स्नेह के अधिकार का प्रयोग करना चाहती थी। उसके पिता उसका अनुरोध मान जायँगे। इसका उसको पूरा विश्वास था। जब से उसकी अम्मा मरी, तब से यही अकेली लड़की उनके साथ रहती थी। इसका प्यार करते समय वे अपनी सम्पूर्ण कठोरता भूल जाते थे। प्यार की भाषा ही में उसने अपने पिता को पढ़ा था। उस खंखाड़ पर्वत-प्रदेश में विशाल वृक्षों की शीतल छाया के नीचे जैसे वह एक निर्मल जल की कल-कल करती अपनी ही छोटी लहरों में उलझी हुई धारा-सी बहती थी, वैसे ही उनके स्नेह की एक मात्र निर्झरिणी मलका थी। मलका की आँखें टाउनहाल में जाते हुए जन-समुदाय में उन्हें खोज रही थीं। इसीलिए बिना इच्छा के भी वह ऊपर टहल रही थी। समीप जाकर देखने की उसमें हिम्मत न थी।

बेटी ऊपर हो ?—झाला ने नीचे आकर पुकारा। हाँ आती हूँ—कह कर मलका नीचे उतर आई। झाला बाजार से आई हुई चीजों को ठीक से रख रही थी। उसी समय मलका ने नीचे आकर कहा—उधर बड़ी भीड़ है झाला। जरा मुझे दिखा दे। कह कर वह उसका हाथ पकड़ कर खींचने लगी।

झाला ने शीघ्रता से कहा—नहीं बेटी! बड़ी आफत है। उधर नहीं जाना चाहिए। भय-विजड़ित कण्ठ से उसने कहा।

ना, मैं जाती हूँ—कह कर मलका चल पड़ी।

झाला मलका को जाते हुए देखकर उसके पीछे-पीछे हो ली। उसने अभी राह में, आते समय जो दृश्य देखा था, उससे उसके प्राण सूख रहे थे। वह मलका को तीखी चेतावनियाँ देने लगी। कोतवाली से टाउन हाल जाने के लिए एक छोटा-सा निकास बना था। ठीक उसी के एक पार्श्व में मलका आकर खड़ी हो गई। उस समय जुलूस आ रहा था। उसके समीप से जत्था पर जत्था कौमी नारे लगाता बढ़ रहा था, वह उसे बड़े हर्ष से देख रही थी। सहसा एक जत्था के पीछे मलका ने देखा—हनीफ एक लाल पट्टा पहने गाता आ रहा है। उसका उत्साह अपूर्व था। समीप आते ही मलका ने पुकारा—हनीफ भैया।

हनीफ ने घूम कर देखा—मलका खड़ी है। उसने बिना सोचे ही कहा—चलोगी मलका? वह अपने जत्थे से अलग होकर उसके समीप आ गया था।

मलका ने झाला की ओर देख कर कहा—मैं वहाँ चल कर क्या करूँगी, हनीफ?

हनीफ ने कहा—आओ न मलका! देखो तुमसे कितने ही

छोटे-छोटे बच्चे और लड़कियाँ हाथ में झण्डियाँ लिये घूम रही हैं। हनीफ उत्साह से पागल हो रहा था। उसने मलका को खींच लिया।

मलका जल्दी से बाहर निकल आई। झाला उसे जाते देख कर अवाक रह गई। कुछ बोल न सकी। बात ही उसकी जबान से न निकली। मलका जब दूर चली गई। तब उसे ज्ञान हुआ। वह रोने लगी पर वहाँ से हिली-डुली नहीं।

मलका भी हनीफ के संग गाने लगी। उस मैदान में अपार भीड़ एकत्रित हुई थी। पर सभी शान्त, अपने जीवन की जैसे निधि खोज रहे थे! उनमें उद्विग्नता, अधीरता और विद्रोह की कोई भावना दृष्टि-गोचर नहीं होती थी। उसी समय सशस्त्र पुलिस की एक फौज और कुछ आफिसरों के साथ जिला मैजिस्ट्रेट आ डटे।

मैजिस्ट्रेट ने आते ही सभा को बन्द करने की आज्ञा दी। सभापति ने सबको शान्त रहने का आदेश दिया। और उन्होंने मैजिस्ट्रेट को विनम्रतापूर्वक उनकी आज्ञा न मानने की सूचना भिजवा दी। जनता हर्ष से पागल हो रही थी। उसमें अपनी शक्ति का ज्ञान तथा आत्म-मर्यादा का भाव जाग्रत हो रहा था। उसने एक स्वर से कहा—आज जनता की आकांक्षा को रौंद कर इङ्गलैण्ड के व्यवसाइयों का हम पर प्रभुत्व करना असम्भव है।

असहाय जनता का ऐसा दुस्साहस सहना अधिकार के दर्प से चूर मैजिस्ट्रेट के लिए एक असम्भव-कल्पना थी। उसने अधिकारियों को भीड़ तितर-बितर करने की आज्ञा दे दी। उन्मत्त गोरे सैनिक और देशी सिपाही अपने प्रहार से लोगों को घायल करने लगे।

मलका एक छोटी सी बच्चों की टोली के सङ्ग हाथ में राष्ट्रीय झण्डी लिए घूम रही थी। टोली के बच्चे लाठियों की वर्षा होते देख कर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। उनकी लम्बी पतली आँखें एक-दूसरे के चेहरे पर स्थिर दृष्टि से जम गईं। दूसरे ही क्षण सबों ने एक स्वर से कहा—महात्मा गाँधी की जय। और फिर एक ओर को चल पड़े।

मलका आगे थी। उसके हाथ में छोटी सी झण्डी और पीछे उसकी टोली थी। राष्ट्रीय नारे लगाता वह दल निःशङ्क होकर आगे बढ़ रहा था।

पुलिस ने पहले बैठी हुई भीड़ पर आक्रमण किया। परन्तु जब लोग इधर-उधर होने लगे, तब उसकी वर्षा घूम-घूम कर होने लगी। गोरे सैनिक भी घोड़े पर दौड़ लगा रहे थे। उनके हण्टर अबाध गति से लोगों पर पड़ रहे थे। जिधर ही वे समूह देखते टूट पड़ते। एक ने बच्चों की टोली पर भी प्रहार किया। मलका के हाथ की झंडी दूर जा पड़ी और वह कोड़े की चोट से चीख उठी।

अभी भागो—उस गोरे सार्जेण्ट ने डाँट कर बच्चों से कहा। वह बढ़ना ही चाहता था कि सभी बच्चे एक स्वर में बोल उठे—जवाहरलाल की जय।

मलका जय बोल कर अपनी आँखों के आँसुओं को पोंछते हुए अपनी पताका में लगी धूल झाड़ रही थी, कि सार्जेण्ट घूम पड़ा। और उसने तीव्र गति से अपने हण्टर से वार किया। कई बच्चे गिर पड़े। गोरा बच्चों को हटते न देख कर, दूसरी बार हाथ उठा रहा था।

मलका ने जोर से कहा—मारो—मैं न जाऊँगी। जवाहर-लाल की जय। वह उत्तेजित थी। उसका चेहरा तमतमा उठा था। किन्तु उसने देखा सार्जेण्ट के पीछे उसके अब्बा आ रहे हैं। उसी क्षण वह काली पड़ गई। तब तक वह जमीन पर गिर गई थी।

अब्बा!—एक कातर ध्वनि उसे रौंद कर जाते हुए सार्जेण्ट के कानों में गूँज पड़ी।

मलका के अब्बा विचलित हो उठे। वे जैसे भविष्य के अन्धकार पूर्ण आँगन में अपनी राह न पा रहे हों। अवाक खड़े होकर कुछ पहचानने की चेष्टा कर रहे थे, हनीफ उस मार-पीट में मलका की खोज कर रहा था। वह दौड़ा-दौड़ा वहीं आ गया। उसने देखा मलका के खून आ रहा है। वह बेहोश है। और उसके अब्बा खड़े उसे देख रहे हैं। क्षण भर के लिए वह विचार-विमूढ़ हो गया। किन्तु शीघ्र ही उसने पूछा—जल्दी कहिए, क्या किया जाय—वह बहुत गम्भीर था।

मलका की बेहोशी में कोई स्मृति मँडरा रही थी। उसने परिचित कण्ठ की ध्वनि पाकर आँखें खोल दीं। हनीफ का चेहरा उसे देख कर सूख गया। मलका की आँखें खुलीं तो उसने देखा—आह! अब्बा भी तो हैं!—उसके दर्द में जैसे शीतल हवा लगी। वह काँप कर फिर बेहोश हो गई। उसने धीरे से कहा—हनीफ भैया!—और उसकी आँखें फिर मुद गईं। मलका के अब्बा ने कहा—इसे अस्पताल...वे इससे अधिक कुछ न बोल सके। हनीफ यह सुनने के लिए वहाँ न था।

उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उस कोलाहल के बीच

वे अकेले खड़े मलका के लिए छटपटाने लगे। वे अपने को भूल गए। मलका के शरीर को सहलाते हुए उन्होंने कई बार पुकारा—बेटी!

मलका के तोते का पिंजड़ा आँगन में पड़ा था। वहाँ उसकी सुध लेने वाला कोई नहीं था। दो दिन तक वह मलका के लिये उस पिंजड़े में विकल होकर घूमता रहा।

दूसरे दिन शाम को, जब मलका के अब्बा ने आकर दरवाजा खोला, तब तोता एक आशा से उत्फुल्ल होकर पुकार उठा—मलका! जवाहरलाल की जय!—वह अपना सहज प्रत्युत्तर सुनने के लिये अपने दोनों डैने फैला कर दरवाजे की ओर देखने लगा।

मलका के अब्बा की आँख से आँसू गिरने लगे। उस तोते की आवाज में मलका के वियोग की ज्वाला जैसे साँस ले रही थी। तोते की पीड़ा उनकी वेदना की वीणा में झनझना उठी। वे पिंजड़े के पास बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगे।

तोता फड़फड़ाने लगा। उन्होंने रोते-रोते कहा—मलका तुझे छोड़ कर कहाँ चली गई, परबत्ते?

तोता कुछ बोला नहीं। वह उनसे जैसे डर रहा था। अब भी अकेले में कभी-कभी तोता मलका को वैसे ही पुकार उठता है। उस समय उसका पुकारना सुनकर मलका के अब्बा की आँखों में आँसू आ जाते। वे उसकी ओर बड़े प्यार से देखने लगते; किन्तु तोते ने तो उनके सामने कभी नहीं कहा—मलका! जवाहर लाल की जय।

रमेश

वह वेश्या थी। उसकी मुखश्री यौवन के अंचल से अंतर की बिखरी हुई स्नेह-राशि को एकत्रित कर जब कभी योंही निष्फल हँसी हँस देती, तब न-जाने क्यों वह रिक्त प्याली-सी आँखों से सूनी दीवालों की छाया में छिपी-भगी मानों अपनी हँसी को ढूँढ़ लाने के लिये व्यग्र हो जाती। वह अपनी ही एक पहेली थी। जब से अपने को वह जान सकी थी, अपने रूप, यौवन तथा जीवन की ममता का अनुमान कर सकी थी, तभी से वह एक पहेली बन गई थी। विधाता का यह उग्र आशीर्वाद शाप-भ्रष्टा गौतम नारी की भाँति उसे कुंठित कर देता। उसकी मांसल देह पत्थर बन जाती, वह अपने अंतर की लज्जा से दबी-सी

—मरी-सी जाती, डूबने-उतराने-सी लगती—किनारा खोजती। कहाँ? अनंत के उस पार, जहाँ वह अपने को भी न देख सके—उस निविड़ अंधकार के अंतस्तल में। विद्रोही मन आकुल होकर कहता—क्यों, जरूरत क्या है? वह शर्मा जाती, असभ्य यौवन चिल्ला उठता—मैं खींच लाऊँगा। वह व्याकुल होकर पीछे हट जाती। यही उसके एकांत जीवन का रहस्य था। पिंजड़े का आबद्ध तोता जब कभी पुकार उठता—क्यों मालती, तू गायगी नहीं। मालती स्नेह-पुलकित होकर कभी-कभी कुछ योंही गुनगुनाने लगती। तोता कुछ भी न समझकर मौन रह जाता।

उस दिन दीपावली की रजनी ज्योतिर्मयी बनकर हँस रही थी। मालती वेश-भूषा को अनुरूप कर अपने ऊपर के वातायान से ललचाई हुई अगणित आँखों को चुपके-चुपके कुछ दे रही थी। उसकी आँखों ने अपनी अट्टालिका से दूर एक युवक को बाँसुरी बजाते देखा। देखा—उसके घुँघराले बाल अपनी असंयत उलझन में बिखरे पड़े हैं। वह दुर्बल क्षीण-मलिन-काय युवक जैसे बाँसुरी के स्वरों में से प्राणों का क्रंदन फूँक रहा है। देखने में वह बंगाली जान पड़ता है। मालती की इच्छा हुई कि मैं भी बाँसुरी सीख लूँ। फिर क्या था। युवक बुलाया गया। युवक को सामने पाकर मालती अप्रतिभ हो गई। आप बाँसुरी बजाते हैं? मानों मालती के भारावनत कंठ से ये शब्द बड़े कष्ट से निकले। संकोच की लालिमा ने उसके यौवन को आरक्त कर दिया। युवक ने निःसंकोच होकर कहा—जीहाँ, यही तो मेरा व्यापार है। अतीत की कितनी ही उज्ज्वल स्मृतियाँ अंधकार बनकर उसकी आँखों में समा गईं। वह प्रस्तर-मूर्ति की भाँति खड़ा

रहा। हमें भी बाँसुरी सिखा देगे, बैठ न जाओ—मालती ने करुण स्वर से कहा। युवक जैसे भींग गया, बैठते-बैठते कहने लगा—तुम...तुम्हारी इच्छा, हमें आता ही क्या है, जो तुम्हें सिखा दें। वह जैसे अकिंचन था। मालती के अन्यमनस्क मन ने देखा—यह कौतुक है, पैसों में खरीद लेनेवाला खिलौना है। बुद्धि सहमत होने जा ही रही थी कि तोते ने कर्कश स्वर में कहा—बाँसुरी बजाते हो, तो बजाओ न जी! युवक आवाक् होकर बरामदे की ओर देखने लगा। मालती तथा अन्य बैठे हुए लोग हँस पड़े। एक बुढ़िया बोली—हरामी! रामनाम तो लेता नहीं, हुकूमत चलाता है। अब चने न दूँगी, तब न जानेगा।—शासनपटुता ने उसकी मुखाकृति को गंभीर बना दिया।

रमेश वहीं रम गया। जीवन का सारा स्वप्न सिमट कर, आँखों की परिधि में प्रत्यक्ष मूर्तिमान बन कर जम गया था। वह स्तब्ध था, किन्तु सचेत था! उसका तर्क उसे विश्वसनीय था। अब उसकी बाँसुरी का स्वर बदल गया था। बसंत के पागल भौंरे झूम पड़े। बाँसुरीवाले ने हँस दिया—वह विजयी था।

रमेश!—नीचे से मालती ने पुकारा।

क्या है ऊपर आओ न—कह कर रमेश सीढ़ियों की ओर प्रत्याशित भाव से देखने लगा।

मालती पान का डिब्बा लिए धीरे-धीरे सीढ़ियों पर चढ़ती हुई छत पर जा पहुँची। उसके बाधा-बन्धन-हीन कुञ्चित केश अगहन के घाम में चमक रहे थे। रमेश मालती की स्वर्णावल्ली पर गुँथे

हुए यह भौंरे की राशि देख कर चकित रह गया, जैसे उसके भरे हुए घर को डाकू लूट रहे थे। पर वह परवश था, किन्तु प्रसन्न भी था। एक मखमली कालीन पड़ा था। उसी पर वह बैठ गई। रमेश दूसरी ओर को देखने लगा था। बोला—अब मन भाग जानेको कहता है, मालती।

मालती मानों दृष्टि विहीन नेत्रों से देखती हुई बोली—क्यों रमेश, अभी तो मैंने बाँसुरी भी नहीं मँगाई, तुमने सिखा देने को कहा था न? आज जाने को कहते हो—क्या तुम्हें कोई तकलीफ है?

कुछ नहीं मालती! योंही न जाने क्यों इच्छा ही तो हो गई—होती है, मैं क्या करूँ बतलाओ न?—कह कर रमेश मालती का मुँह देखने लगा।

नहीं-नहीं, तब तुम नहीं जाने पावोगे रमेश। मेरा भी तो दिल नहीं लगता, जैसे कोई कहीं मेरा हई नहीं, तो क्या मैं भाग जाऊँ? नहीं तुम्हें रहना पड़ेगा।

मालती जैसे नशे में कुछ अनर्गल बकती हुई सचेत हो गई हो। हँसकर बोली—घर को याद आती होगी, क्यों न रमेश?

रमेश कुछ विरस होकर कहने लगा—घर पर कौन है मालती, जिसे हम आज याद करें, कोई भी नहीं।

मालती बात काटकर बोली—कोई भी नहीं? तुम्हारी शादी नहीं हुई रमेश?

रमेश की आँखें भर आईं, वह कहने लगा—हुई थी मालती। मेरी शादी, जब मैं पाँच वर्ष का था, तभी हुई थी। हम दोनों एक

ही डाली के दो अनाघ्रात कुसुम की भाँति चिरआलिंगित हँसते थे। अपने पिता की टूटी यही बाँसुरी लाकर जब हम बजाते, वह बैठी हँसा करती। नहीं जानता था, मालती, कि वह रुलाने के लिये हँसती थी।

रमेश की सजल आँखें अनायास ही बरस पड़ीं। मालती गुरु-ताड़ित बालक की भाँति शांत, स्तब्ध और भयभीत होकर रमेश के शिथिल शरीर पर हाथ फेरने लगो। डरते-डरते बोली —तुम बालकों की तरह रोते क्यों हो?

रमेश जैसे क्रुद्ध होकर बोला—तुम क्या समझोगी, मैं क्यों रोता हूँ? दुनिया क्यों रोती है? जिसके कलेजे में वायु के लहरों का भी झकोरा न पहुँचा हो, वह फटे हुए कलेजे की पीड़ा कैसे समझेगा?

नम्रमुखी मालती बड़े करुण-स्वर में बोल उठी—हाँ, क्यों नहीं, तुम्हीं अच्छे हो, अपने दर्द को समझते हो, उसकी ममता से तुम्हारा संतोष बलवान् है। रोकर तुम अपना हृदय हलका भी रखते हो; पर जो अपनी पीड़ा जीवन की आग में धीरे-धीरे सुलगा कर, कृत्रिम स्नेह से हँस रही हो उसे...? मैं तो रोना चाहती हूँ; पर क्या करूँ, रो ही नहीं सकती। सच कहती हूँ, झूठ न मानना, जैसे मेरे भीतर आँसू की एक भी बूँद नहीं, जो आँखों को सींच सके रमेश!

रमेश आश्चर्य-विमुग्ध होकर उसे देख रहा था। उसकी मुद्रा टूटी। उसने देखा—निदाघ के एक ही झोंके ने मालती की कुसुमित वल्लरी को श्री-हत कर दिया। वह जैसे कुछ पहचानने लगा था। होंठ खुले-के-खुले ही रह गए। वह अभी तक मौन ही रहा।

मालती ने पूछा—वह कब क्या हुई रमेश ?

रमेश को जैसे बात मिल गई। कहने लगा—आज चार-पाँच साल हुए मालती, उसे क्या कहूँ, क्या हो गया ? मेरे देश में ज्वर का प्रकोप प्रायः छ मास सर्वव्यापी रूप धारण करता है। उसीने उसे आत्मसात् कर लिया। मैं नहीं जानता था कि भीषण लहरें मँझधार के पूर्व ही मल्लाह के डाँड़े छीन लेंगी। यह नाव कैसे कहाँ जायगी, जानती हो मालती ? अभी तक डूब नहीं गई, यही आश्चर्य है—है न ?—रमेश बालकों-जैसा उत्सुक हो कर उसकी ओर देखने लगा।

माँझी और डाँड़ों की कमी नहीं रमेश,डरते क्या हो ! —कहकर वह हँसने लगी। फिर बोली—उसके बाद तुम कैसे क्या करते थे ? बताओ, आज यही सुनूँगी।

रमेश गंभीर बना बैठा था। वह यों ही अन्यमनस्क भाव से कहने लगा—जब से मैंने होश सँभाला, माँ को गाँव-गाँव से भीख माँगकर लाते देखता था। वह मेरे तथा माँ के लिये पर्याप्त होता।

मालती ने पूछा—तुम्हारे पास कोई पैतृक संपत्ति नहीं थी रमेश ?

रमेश ने उत्तर दिया—थी, हम लोग एक प्रकार के वैष्णव-साधु हैं। देश में सौ-पचास गाँव अपनी ही यजमानी समझते हैं। उसी में भजन वगैरह सुनाकर अपनी वृत्ति चलाते हैं। यह हम लोगों के लिये कोई अपमान की बात नहीं। और, दूसरे भी मेरा सम्मान करते हैं। यह तो धार्मिक प्रथा है, यह क्या कोई पैतृक संपत्ति नहीं है ? —रमेश रुक गया।

मालती ने रमेश को बिना कुछ उत्तर दिये ही नीचे आँगन में खेलती हुई एक आठ-नौ वर्ष की लड़की से बाल बाँधने का सामान ऊपर माँगा, और फिर रमेश से बोली—हाँ जी, तुम कहते चलो और मैं भी तब तक अपने बाल ठीक कर लूँ।—कह कर उसने खुले बालों में अपनी उँगलियाँ उलझा लीं।

रमेश ने प्रसंग मिलाकर फिर कहना शुरू किया—क्या कहूँ मालती, हम दोनों सुखी थे—न भूत का कोई गौरव, न भविष्य की कोई सुख-कल्पना थी। बेचारा वर्तमान जैसे लोरियाँ सुनाकर हम लोगों को सुख की नींद सुला जाता था। अब थोड़े ही में कहता हूँ मालती। इतने ही में अज की इन्दुमती की घातकमाला की भाँति दैवदुर्विपाक से वही मेरी स्त्री मेरे गले पड़ी। कैसे कहूँ, उसके स्पर्श में पुलक था या नहीं, उसका सौरभ कहाँ तक मादक था! अब जानता, नहीं, वह घातक न थी। हाय घातक थी, कैसे कहूँ?

मालती ने रमेश को उद्विग्न देखकर कहा—उसके बाद तुम क्या करते थे, यही बतलाओ न?—कहकर वह चुप हो गई। सामने का शीशा जैसे उसके रूप को तोल लेना चाहता था। रमेश इसे नहीं देख सका। वह कहने लगा—फिर मैं करता ही क्या? जैसे शून्य को अपनी छाती में भरकर उसकी आकृति की सीमा में भूल गया था। मुझे सारा संसार अंधकार मालूम पड़ने लगा। वह घातकमाला मुझे अपना प्रेत बनाकर छोड़ गई। मैं चिर व्यस्त रहता। मेरी माता इससे आकुल हो उठीं। अब वह जब बाहर से माँगकर आतीं, तो उन्हें यहाँ भी घर में सारा काम करना पड़ता। यह उनकी-जैसी वृद्धा के लिये दुःसह था, इससे वह चिड़चिड़ी बन गईं। असंभवता के बोझ ने उन्हें क्रूर बना

दिया। मेरे दुःख का उन्हें ज्ञान नहीं है, मुझे यही ज्ञात होता था।

मालती हँस पड़ी। रमेश करुण होकर कहने लगा—मैं तो ऊब गया था। आत्महत्या कर लेना ही सुखप्रद जान पड़ने लगा; पर जैसे साहस न होता—बुद्धि हताश थी। एक दिन मैं सारी ममता तोड़कर घर से भाग चला। कहाँ जाता था, पता नहीं। पर प्रसन्न था, दुर्बल साहस मुझे बलवान् बनाने में अत्यधिक प्रयत्नवान् था। मालूम नहीं, उस दिन एकादशी थी या नहीं; किन्तु मैं निराहार रह गया। मेरी बाँसुरी मुझे बोझ मालूम पड़ने लगी। और पास में ही था क्या! समीप ही एक गाँव था, उसी के एक कुएँ पर कुछ स्त्रियाँ जल भर रही थीं। मैं वहीं जाकर बैठ गया। उसी के सामने एक तरफ बड़ा-सा मकान था। उसका मालिक कदाचित् उस गाँव का जिमींदार रहा होगा। उसके अत्यन्त बीमार होने के कारण दूर के एक डाक्टर देखने आए थे। वह जब बाहर निकले, तब उनके साथ और भी बहुत-से आदमी थे। मेरी भी उत्सुकता बढ़ी। मैं भी वहीं पहुँच गया। लोगों ने मुझे अपरिचित पाकर मेरे बारे में मुझसे पूछताँछ की—मैंने सबको यथोचित उत्तर दिया। डाक्टर ने शीघ्र ही मुझे अनाथ दुखिया बालक समझ लिया। मेरा सूखा मुँह उन्हें दयालु बनाने में सहायक हुआ। वह बड़े कृपालु थे। अनाथों पर उनकी स्वाभाविक सहानुभूति थी, अतः वह मुझे अपने घर ले आये। वहाँ मैं उनकी सेवा करता था। वह मुझसे अनायास ही प्रेम करते, मेरा ध्यान रखते, और मुझे ब्राह्मण जानकर साक्षर बना देने की उनकी रुचि हो गई थी। यही उनकी मेरे लिए विशेष उदारता थी। मैं पढ़ने लगा—बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ गया; पर

जैसे मुझे सब भूला जाता था। सब जान-समझ कर भी मैं जैसे कुछ नहीं जानता-समझता था। घातकमाला से मैं तो अपना प्रेत न था! वह कहते—मेरी बुद्धि तीक्ष्ण है। मैं समझता, ये नाहक डाक्टर हैं! वह सोचते—इसे कुछ और पढ़ा-लिखाकर कहीं अच्छी नौकरी दिला दूँ। मैं सोचता—यह मुझे ब्रह्मफाँस में फाँसेंगे। प्रायः चौथा वर्ष उनके यहाँ बीत रहा था। माँ की याद कड़वी दवा की भाँति भीतर ज्वाला फूँक रही थी। एक दिन उनसे बिना कहे-सुने घर के लिए चल दिया। वहाँ जाकर देखा, मेरी कुटिया गिरी पड़ी है, कोई भी रहने वाला नहीं। सुना, माँ पागल होकर स्वपथगामिनी हुई। फिर मैं भी इधर को चला आया। लोग कहते थे—मेरी माँ पागल हो गई। क्या यह सच हो सकता है मालती ?

रमेश का मुँह उदास हो गया! मालती ने चिंतित होकर कहा—हो गई होगी रमेश। रमेश उठ खड़ा हुआ। मालती भी नीचे जाने के लिये सामान समेटने लगी।

समय कदाचित बलवान् होता है, अन्यथा उसे किसी डिबिया में बन्द होकर ही रहना पड़ता। कम से कम रमेश यही समझता था। बसंत को आमंत्रित करने वाला मलय-पवन समस्त लता-गुल्मों को अपने आलिंगन से सिहरा गया। तृण-राशि अनायास ही नाच रही थी। रमेश पूर्ण युवा था। कोकिल का स्वर उसे उसकी व्यथा मालूम पड़ती। कौन जाने, उसका अनुमान कहाँ तक सत्य था। हाँ, उसकी कल्पना उसे सुखद थी। उसे यहाँ

रहते चार-पाँच मास बीत रहे थे; पर वह यह नहीं जानता था कि यहाँ क्यों रुका है। उसे यहाँ कोई काम भी नहीं करना पड़ता था। इस घर के सभी उससे भीतर से बुरा मानते थे, पर मालती? वह इसे चाहती थी। यद्यपि वह स्वयं नहीं जानती थी कि रमेश की क्या जरूरत है, किन्तु रमेश के अभाव की भी कल्पना उसके लिये दुखद थी। वह जानती थी कि रमेश से लोग बुरा मानते हैं, यही उसके लिये अचिंतनीय चिंता थी। मालती का बाल्य-काल पाँव पसारते ही चला गया था। हाँ, व्यापार-पूर्ण यौवन चतुर नाविक की भाँति उसके जीवन से लगा था। उसका रूप समालोचकों के लिये नहीं, किन्तु सुकुमार एवं करुण हृदयों के लिये अवश्य आकर्षक था, जिस पर भोलापन इतराया फिरा करता। पर जैसे उसे इसका मोह न था। उसके गाने की बाजार में धूम थी। लोग आते-जाते। रुपयों की भी कमी नहीं। पर उसका मन इधर से दूर-ही-दूर रहता। मृग-शावक की भाँति भयभीत बना रहता। वह स्वयं इस दुरवस्था से चिंतित थी। घर के सभी उसे मालिक समझकर व्यवहार करते। यद्यपि बुढ़िया उसकी मौसी श्रेष्ठ थी, तथापि वह भी इसी का मुँह देखा करती। यही उसकी गौरवमय अवस्था उसके लिए विशेष बन्धन बनी थी। वह आलस्य-अभिभूता एक छाया की भाँति गिरी-पड़ी निस्पंद रहना चाहती थी। पर यह कैसे? जीव अचेतन प्रस्तर-मूर्ति कैसे होगा? रमेश की उनींदी आँखों में यह सब रहस्य बन कर समा रहा था। वह चैतन्य पागल सब समझ रहा था; पर जैसे वह एक मायावी के निकट दर्शक की भाँति कौतूहल-पूर्ण अपनी जिज्ञासा को तृप्त कर रहा हो। लेकिन एक दिन वह चौंक पड़ा। सत्संग के सुअवसर ने रमेश को गँजेड़ी बना दिया।

नशे में उसे जैसे संतोष मिलता। इसी भावना ने उसे बलवान् बनाकर विजयी किया था।

मालती ने उस दिन रूखे स्वर से कहा—रमेश, तुम्हारी आँखें लाल अंगारे की तरह हो रही हैं। तुम आजकल खूब गाँजा पीते हो, यह बुरा है।

रमेश ने देखा, उसके हृदय का सारा स्नेह उसकी आँखों में पारा-सा उतर आया है। वह अप्रतिभ हो गया। मालती की दशा से वह कातर हो उठा। उसने मन में सोचा—भिखारी से भला याचक क्या पायेगा? शायद संकोच फटी लुगरिया ही न रखवा दे। संसार मुझे संपूर्ण नग्न देखकर कहीं हँस देगा, तो? हाय मैं तो डूब जाऊँगा। वह मालती से बिना कुछ कहे ही वहाँ से हट गया था। वह बाजार होते शहर के बाग में पहुँचा। उसका हृदय उबल रहा था।

वह सोचता—मालती वेश्या है, अपने परिवार की पोषिका है, उसके रूप-गुण की ख्याति उसे विशेष अवसर दे रही है। ऐसे समय मैं कहाँ से क्यों धूम-केतु की भाँति उसके यहाँ कूद पड़ा। कितनी ही उग्र भावनायें उसके हृदय को उद्वेलित करने लगीं। वह त्रस्त-भयभीत की नाईं काँपने लगा। पास ही बेंच थी, उसी पर लेट गया। उसकी चिंता ने स्वप्न का रूप धारण किया। उसकी बंद आँखों का सिनेमा बड़ा सुंदर था। एक सघन उपत्यका के नीड़ में दो सुंदर पक्षी विश्राम लिया करते थे, उनके मनोहर कल-नाद से यह प्रदेश मुखरित रहता। अकस्मात् उपल वर्षा ने उपत्यका, नीड़ और उस पक्षी की चिरप्रेयसी, सभी को ध्वंस कर दिया। रमेश पुनः काँप उठा, वह अब और सिमटकर

पड़ रहा। देखने लगा—अभागा पक्षी एक वृक्ष के ठूँठ पर बैठा चारो ओर दृष्टिपात कर रहा है, पर क्या? कुछ भी नहीं। वह जैसे अपने ही घर में अपरिचित हो गया था, शंकाकुल उसका मन उसे ही फाड़ खाने लगा। सारा दृश्य उसे असह्य हो उठा। वह उड़ गया—बहुत दूर अपरिचित देश के एक कोने में, जहाँ वृक्षों के सघन अंतराल न थे, अपने जीवन के परिचित एक भी चिन्ह न थे। वह क्या करता? संध्या समीप थी, एक घर की दीवाल पर वह जा बैठा। उसका सुकुमार शरीर संध्या की सुनहली छाया में निष्प्रभ दीपक की भाँति अपनी ही सीमा में संकुचित था, मनोहर वेश मलिन था; पर तो भी चिड़ीमार की नजर से वह छिप न सका। उसके फंदे उसे फँसाने के लिये बार-बार समीप आने लगे; पर वह फँस न सका। उसका लासा इसकी पिच्छलता पर स्वयं फिसल पड़ता। पक्षी दुर्बल डैनों से खिसकना चाहता था, पर जैसे उसका मन उन्हें उभड़ने ही न देता था। रमेश मन-ही-मन आकुल हो उठा। आखें खोलकर देखा—बाग के वृक्ष जैसे शिथिल चाँदनी के ज्योत्स्ना-पट पर अंकित हैं। कुछ विशेष रात्रि का अनुमान कर वह मालती के घर की ओर चल पड़ा।

मालती ने देखा, रमेश कहीं चला गया है। उसने सोचा—उन्हें मेरा कहना बुरा लगा, लगा करे—वह मेरे यहाँ रहते हैं; यहाँ के लोगों का उन पर प्रभाव न पड़े, यह भी मेरा कर्तव्य है। नहीं तो एक दिन वह सोचेंगे—वेश्या के घर टिककर मैंने अपना

इतना पतन किया ! यही तो मेरे मर जाने की बात होगी। रमेश बड़ा सीधा है, सरल है, उसके हृदय का दर्द उसको एक कहानी है, जो उसे सदैव पवित्र, उन्मुक्त रखती है, तब तो उसकी रक्षा उसे सतर्क होकर करनी होगी, और मुझे भी...मैं क्या जानूँ—? अपने कमरे में पड़ी-पड़ी वह यही सोच रही थी। घर में बुढ़िया बीमार थी, और सभी इतस्ततः पड़े थे। किसी को किसी की खबर न थी।

रमेश चुपचाप घर में घुसकर अपने कमरे में चला आया। मालती के कमरे की रोशनी से उसके कमरे में आलोक आ रहा था। वह कपड़े उतार कर बिछौने पर जा रहा था कि मालती हाथ में लालटेन लिए वहाँ आ उपस्थित हुई। उसने देखा रमेश का चेहरा भभरा हुआ रक्त वर्ण है, और आँखें चढ़ी हुई।

मालती की नसें ढीली पड़ गईं। उसने चिंतित होकर पूछा—इतनी रात तक कहाँ रहे रमेश ?

रमेश ने कुछ संकुचित होकर कहा—कहीं नहीं, योंही जरा टहलने चला गया था।

मालती को रमेश का संकोच आज अधिक दुखदायक मालूम पड़ा, जैसे वह मसल उठी हो।—कैसी तबियत है! पूछते हुए उसने रमेश का हाथ पकड़ लिया,—अरे तुम्हें तो ज्वर है!—उसने घबड़ा कर कहा। उसका जैसे माथा घूम पड़ा। हाथ की लालटेन जमीन पर रख दी।

रमेश ने बिस्तरे पर बैठते हुए कहा—ज्वर नहीं। बाग में लेट गया था, वहीं कुछ सर्दी लग गई, कोई हर्ज नहीं। तुम अभी तक सोई नहीं!

रमेश का प्रश्न मालती के कान बेध गया। वह चुप थी, पर खड़ी न रह सकी। रमेश के पास ही बैठती हुई पूछ पड़ी—अब भी जाड़ा मालूम पड़ता है ?

रमेश ने करवट बदलते हुए कहा—नहीं, अब तो तबियत ठीक है। तुम जाओ, सो रहो।

मालती कुछ उत्तर न देकर, चुपचाप वहीं बैठी रह गई। न जाने क्यों उसका हृदय बैठने-सा लगा। आँखों में बुल्ले उतरा आए, वहीं वह बिछौने के एक कोने पर बैठ गई थी। उससे मानों उठा ही न जाता था। रमेश सब जानता हुआ भी दूसरी तरफ मुँह किये जैसे सिकुड़ा जा रहा था। आज उसे अपना घर, माँ की स्मृति, स्त्री का वियोग, डाक्टर का स्नेह और बाग का स्वप्न, सभी जाग्रत होकर जैसे घेर रहे थे। वह सोच रहा था, यहाँ मैं क्यों ठहरा ? मैं अब यदि न रहूँगा, तो शायद मालती को कष्ट होगा। उसकी आसक्ति कितनी निराधार है। इन्हीं सब विचारों में पड़कर वह यांत्रिक कष्ट पाने लगा। रमेश बिलकुल शिथिल पड़ रहा था। ज्वर का वेग शरीर में कंप उत्पन्न कर और अधिक त्रस्त कर रहा था। रात योंही बीत गई। फिर प्रभात हुआ। उषा की सलज्ज शैय्या छोड़कर सूर्य अँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे उठने लगा। इसे कितने लोग देख रहे थे ? बाहर बरामदे में बुढ़िया तथा दो-एक लड़के बैठे थे।

आज अभी तक मालती सोती है ! यहाँ नहीं आई। उसका पालतू तोता उसके लिये व्याकुल होने लगा। वह मालती-मालती कई बार पुकार उठा। समीप बैठी बुढ़िया झल्ला उठी; अपने पास बैठी हुई लड़की से बोली—अरे, इसका पिंजरा नीचे उठाकर फेंक दे।—तोता राम-राम कहने लगा।

मालती उठकर बाहर आने लगी। उसे मालूम हुआ कि रमेश जग रहा है। पर वह कुछ बोली नहीं। बाहर निकल आई। बुढ़िया जैसे जल उठी हो, उसने अपना मुँह दूसरी तरफ फेर लिया। मालती को मालूम हुआ, जैसे वह किसी नये संग्राम की योजना किया चाहती है। वह डर गई। इतने में रमेश बाहर निकला। मालती रमेश को देखकर जैसे गड़ गई।

रमेश ने उसे देखते हुये कहा—आज मैं घर जाऊँगा; और अभी जाऊँगा। मालती तुम नाराज न होना, मैं तुम्हारे यहाँ बड़े आनंद से रहा, पर आज घर की याद आ रही है, इसी से जाता हूँ।

मालती सूखे काठ की तरह खड़ी सुन रही थी। रमेश अपनी कोठरी में जाकर दो-एक आवश्यक चीजें निकाल लाया, और मालती से कहने लगा—अच्छा, जाता हूँ, तुम मेरे अपराधों को क्षमा करना। यदि जीवित रहा, और इधर ईश्वर ले आयेगा, तो अवश्य तुम्हारे दर्शन करूँगा।—बुढ़िया ने गर्विता की भाँति दृष्टि फेरकर एक बार रमेश और मालती को देखा।

रमेश सीढ़ियों से नीचे की ओर उतरने लगा, तब मालती की जैसे तंद्रा टूटी। उसने आगे बढ़ कर नीचे रमेश का हाथ पकड़ लिया, और कहा—तुम न जाओ; नहीं तो शायद मैं जी न सकूँगी। मालती का गला भर आया।

रमेश ने हाथ छुड़ाते हुये कहा—नहीं, आज तुम्हें छोड़ना होगा। मैं फिर कभी आऊँगा। आज नहीं—कहकर रमेश आगे बढ़ा।

मालती यह आघात न सह सकी। वह वहीं मूर्छित हो कर गिर पड़ी। रमेश ने इसे न देख कर बाहर निकलने के लिये दरवाजा खोला। देखा—सामने सड़क पर कुछ लड़के एक पागल बुढ़िया को तंग करने के लिये वृहत् कोलाहल का आयोजन किये हुए हैं। वह क्षण-भर वहीं स्तब्ध खड़ा रह गया।

भ्रम

यों हो एक अपरिचित की तरह चले जाओगे ?—श्यामा ने जाते हुये विनोद के कुरते को पीछे से थाम कर कहा।

आज यह बहुत दिनों पर पूछती हो श्यामा—विनोद ने घूम कर दृढ़ता से उत्तर दिया—और, हम तुम तो एक दूसरे से अपरिचित बन जाने के लिये प्रतिश्रुत हो चुके हैं। तब भी...।—वह अविचल खड़ा था। वहाँ से हटने का कोई उपक्रम भी उसने नहीं किया।

मैं वहाँ से उठते ही देहली के पार पहुँच गया था। जूते का फीता ठीक करते हुये उपर्युक्त बातें मैंने सुनीं। मेरे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रह गया। मेरे साथ विनोद यहाँ मेरी

मित्रता ही के कारण बहुत हठ करने पर आया था। श्यामा के संग कभी का उसके परिचय की बात मुझे मालूम न थी। यहाँ दो घंटे एक साथ बैठ कर भी इस तरह की कोई कल्पना मैं न कर सका। वह चुपचाप संकोच से जैसे दबा हुआ वहाँ बैठा था। फिर मैं किसी तरह की कल्पना ही कैसे कर सकता था। किन्तु जब श्यामा की उससे बातें होने लगीं, तब मैंने समझा कि विनोद ने यहाँ भी कोई अपने आदर्शवाद का जाल फेंका है। मैं तो चलने के लिये उद्यत था। विस्मय से मैंने पूछा—क्या है श्यामा ?—और तुम चलते क्यों नहीं विनोद ? तुम सभी जगह तर्कयुद्ध करने को प्रस्तुत हो जाते हो ! जानते हो यह ...; श्यामा की ओर देख कर मैंने विनोद से व्यङ्ग भी किया। दोनों से मैंने कारण जानने ही के लिये प्रश्न किये। मेरे मन में हजारों भावनायें जागृत हो उठीं। एक बड़ी आकुलता हृदय को घेर रही थी। मैं बड़ी तीक्ष्ण दृष्टि से विनोद की ओर देख रहा था।

राधे !—मुझे विस्मित मूढ़ और खिसियाया हुआ-सा देख कर भी विनोद ने हँस कर कहा—इस दुनिया से अपरिचित होते हुये भी वह 'यह' जानता हूँ। तुम नहीं जानते, यह सभी आने वालों को अपने मनोरम इन्द्रजाल में उलझा लेना चाहती हैं ? कदाचित इसीलिये इस अभिनय की अवतारणा इन्होंने की है ? देखते ही हो मुझे किसी दवा की आवश्यकता नहीं—फिर भी ! चलूँ ?—विनोद ने पूछा।

उसके व्यङ्ग से, जले हुये कपड़े की तह की तरह, निर्जीव होकर श्यामा उसका मुँह देखने लगी। उसके आँसू आँखों में उमड़ कर भी जैसे किसी लाज से बाहर निकल नहीं सके। विनोद इसे जैसे खूब समझता हुआ विशेष प्रफुल्ल हो रहा था।

उसके व्यंग का जैसे यही अभीप्सित फल हो। इसीसे अपने आनन्द को अपनी चौड़ी छाती में छिपाये वह वहीं रुका खड़ा था।

मैं सहसा उसे चलने के लिये न कह सका। एक कुतूहल दृढ़ होकर मेरी समस्त सत्ता को अभिभूत कर रहा था। इस समय मेरी उपस्थिति मुझे ही भार जान पड़ने लगी।

आप तो दूसरे नहीं—श्यामा ने मुझे जैसे बचा लिया, उसने हँस कर कहा—आप दस मिनट बैठ जाइये। मैं आप के सामने ही इनसे दो बातें कर लूँ।—वह मेरे उत्तर की प्रत्याशा में थी।

मैं चुपचाप आकर अपनी कुरसी पर बैठ गया। एक सुन्दर बिजली का वल्व अपने प्रकाश में जैसे स्तब्ध होकर जल रहा था। मैं उसकी छाया में अपने हृदय का अन्धकार छिपा कर अपने चेहरे पर प्रसन्नता लाने की चेष्टा कर रहा था।

देखिये राधे बाबू—श्यामा ने मेरी ओर संकेत करके कहा—यद्यपि आप मेरे और इनके परिचय की बात तक नहीं जानते फिर भी मैं समझती हूँ कि आपके सम्मुख इस समय अपनी निज की बातें करके मैं हास्यास्पद न बनूँगी।

विषय में गम्भीरता मालूम पड़ी। मैं सतर्क हो गया। पर निस्तब्ध। मैं जैसे मूर्ति था, मेरे मन में किसी विचार का आन्दो-लन न था। था केवल आश्चर्य। उसने कहा—

वह दिन, लड़कपन में जब मैं और यह, एक साथ खेलते थे—आज भी मुझे याद है। सचमुच! तुम्हें आश्चर्य होता है? ठीक है। बात यह थी, हम लोग इन्हीं के गाँव में—जो कि मेरे भी पुरखों की जन्मभूमि थी, रहते थे। हम सब साथ ही खेलते,

पढ़ते और रहते। इनका कोई दूसरा साथी न था और मेरे साथ तो अनेकों ही खेलना चाहते थे। पर जानते हो ! यदि मैं इनको ओर से जरा भी उदासीन होती तो यह सोधे, साथ से अलग हो कर, रोते हुये अपने घर में जाकर पड़ रहते। किसी से न बोलते। कुछ भी न कहते। आह ! ये बड़ी पुरानी बातें हैं। पर मेरे लिये तो जैसे कल की। राधे ! तुम भी तो मुझे प्यार करते हो !

यह सत्य कितना कठोर व्यङ्ग था। मैं संकुचित होगया। अपनी एक पुरानी मर्मकथा कहते-कहते उस मुखरा ने कैसा अपघात किया ? मैं तिलभिला उठा। मैंने उस बात को फिर भी जैसे पीकर विनोद की ओर देख कर कहा—हाँ, अपनी बात कहो। नहीं तो विनोद को शीघ्र देर होने लगेगी।

मुझे सब चाहते थे—यही मेरे लिए शाप बना। बना क्या है ! जीवन की सकरी गली में सभी चोरों की तरह झाँक रहे थे। मुझे तब क्या पता था ? मैं तो अलग ही दूर सागर के एक छोर में खिली हुई पद्मिनी की तरह जैसे ऊपर ही ऊपर आकाश में अकेली देख रही थी। अपनी ही गन्ध में मस्त—अपने ही पराग से उन्मत्त। मेरी दूसरी ओर दृष्टि ही न पड़ती थी। पर गन्ध-लुब्ध अलियों की गुन्जार कानों को बड़ी प्रिय लगती। उसे मैं मुग्ध होकर सुनती रहती। मैं उनका तिरस्कार न कर सकी। पर सच कहती हूँ—वे मेरे मनमन्जूषा का एक भी कण न पा सके। मैं उनमें थी, पर वे मुझमें न थे।

मैं हँसी न रोक सका। हँस कर कहा—हाँ—श्यामा ! स्त्री की जाति, ऐसी गर्वोन्मत्त और स्वार्थपर होती है, यह तुम्हारी आत्म कथा सुन कर ही समझ रहा हूँ। पर हाँ—विनोद...?

उसने बीच ही में मुझे रोका। उसका सारा उत्साह जो मुझसे बातें करते-करते उसकी सुन्दरता में चमक उठा था—काला पड़ गया। उसने एक तीव्र दृष्टि मुझ पर डाल कर कहा—

ओह! राधे, तुम बड़ी शीघ्रता से स्त्री जाति को लान्छित करने के लिये उठ खड़े हुये। यदि मैं कहूँ कि इसका कारण यही है कि तुम उसी जाति—पुरुष जाति के, जिसके तुम और विनोद

हो—हो,—तो क्या मैं अपराध करूँगी? नहीं। उन्होंने भी—विनोद ने—ऐसी ही बड़ी शीघ्रता में अपने ही मन से सब कुछ समझकर किसे कहाँ पहुँचा दिया है; नहीं जानते? तुम्हीं नहीं—सभी ऐसे ही हैं। ऐसे ही कापुरुषों को पुरुष कहते हैं। वे स्त्री जाति के शासक हैं। हाय रे भाग्य!...

उसकी आँखों में आँसू की दो बड़ी-बड़ी बूँदें चमक पड़ीं। मैं क्या कह बैठा? मैं अपनी भूल याद करने लगा। फिर भी श्यामा से मैंने कहा—क्षमा करो। बिना समझे ही मैंने तुम्हें ठेस लगाई है श्यामा।

नहीं—तुम चिन्ता न करो राधे। श्यामा ने कहा—कभी टूटे हुये दिल पर एक बूँद आँसू का भी भार हो जाता है। वह उसे भी सँभाल कर नहीं रख सकता और नहीं तो दुखों का अनन्त कगार उसके ही बल पर तो मुँह बाये खड़ा रहता है? उसके भूख का भोजन, प्यास का पानी और जीवन का प्राण दुख ही है राधे! यह मेरी कमजोरी थी। हाँ—अब क्या कहूँ? मैं तो अपनी बात भूल गई।

वह बड़ी शिथिल-सी जान पड़ने लगी। विनोद मेरा मुँह देख रहा था। मैंने कहा—विनोद से तुम्हें कुछ कहना भी तो है?

आज वही सोचकर तो तुम्हें भी रोक लिया था। उसने एक दीर्घ साँस छोड़ कर कहा—पर उसका परिणाम ? उसकी तो आशा नहीं ! इच्छा भी नहीं, कहूँ तो झूठ नहीं । इन्होंने पहिले ही तुमसे कहा था—मैं अभिनय कर रही हूँ। फिर उसका मूल्य ? हाँ—वही अभिनय तुम भी देखोगे ! सभी उपहास करना तो चाहते हैं ! हाँ तो भी आज सुन लो—जान लो—नारी हृदय की दुर्बलता, जो दुर्बलता होने पर भी उसके लिये महान है, महामंत्र की तरह श्रेय है। जिसका नशा उसके प्राणों के रग-रग में भिद कर अक्षय बसन्त की सुषमा जगाता रहता है। वही आज तुमसे कहूँगी। यह पुरुष जाति उसीको पाकर सम्राट की तरह निर्मम हृदय से इस निरीह जाति पर अपने कठोर राजदंड की व्यवस्था करता है। किन्तु वह भी मेरे लिये अमृत है। राधे ! उसे भी हम सौभाग्य बिन्दु की तरह सिर-माथे रखती हूँ।

उसने बड़ी गम्भीरता से कहा। उसकी आकृति बड़ी सौम्य जान पड़ने लगी। मैं उसके निकट झुका जा रहा था। इसीलिये मेरा मन स्वाभाविक ही सरलता से ओत प्रोत होने लगा। मेरे नेत्रों के सामने एक अस्पष्ट वेदना का चित्र जैसे खिंच गया। मैंने बड़ी ही सहानुभूति से कहा—सचमुच यह संसार बड़ा कठिन है श्यामा ! तुम क्या हो ; यह आज मैं जान सकूँगा ! तुम्हारा हृदय प्रेम का...।

सुनो—श्यामा ने मुझे बीच ही में रोक कर कहा—मैं सब जानती हूँ। मेरे दुखों ने मुझे बहुत कुछ समझा दिया है। तुम केवल सुनो।

उसने कहा—

मेरा हृदय सचमुच प्रेम से परिपूर्ण है। तभी तो मैं अपने दुखों

को हँस कर पोती रहती हूँ। मेरे लड़कपन के साथ ही मेरे सारे सुख मुझे छोड़ कर चले गये। मैं एक शाप से घिरी हुई सदैव जैसे एक वञ्चित का शेष जीवन व्यतीत करती हूँ। आह! मेरे शैशव का हेमन्त अपनी उजली स्निग्ध धूप-सी हँसी; यौवन बसन्त के उषःकालमें विलीन कर जैसे ही दूर जा खड़ा हुआ —उसी के पश्चात् मेरे मन-मुकुर में सहस्रों उज्वल किरणें लिपट कर नाचने लगीं। ओह! मैं भूल गई। यह कठोर जगत पारे की तरह ढुलक कर मेरे चरणों से दूर जा पड़ा। मैं इस मृणमय पृथ्वी के ऊपर अपने आनन्द के, स्वर्ग के, द्वार पर जैसे जाकर खड़ी हो गई। मैं वहाँ की रानी थी। मेरा सुख अपूर्व था। उस प्रकाश की भूलभूलैया में यही—इनका दीप्त मुखमण्डल प्राची में उठते हुए सूर्य के बिम्ब की भाँति उलझ रहा था। मैं लुट गई। वह लुटना—जैसे जीवन का सर्वस्व पाना था। मेरी आँखे भर उठीं। मैं छक गई। मन जैसे अब नहीं, अब नहीं, पुकारने को व्याकुल हो रहा था; पर एक भय और लालच के मारे वह दबा रहा। राधे! उसे मैं ही जानती हूँ। उसके बाद—?

उसके बाद की स्मृति बड़ी रूखी कठोर है। सर्वत्र मेरे चारों ओर से अविश्वास के छूत की बहिया उमड़ पड़ी है। मैं उसी में उभ-चुभ हुआ करती हूँ। सदैव शङ्कित और भय से अभिभूत। सभी हिंसक और निष्ठुर जान पड़ते हैं। तुम्हारी जाति—इस पुरुष जाति को जो सृष्टि की सब से पूर्ण और चरम रचना है—मैं घृणा करती हूँ। हाय, पर उस मुख को, जो आज भी मेरे वेदना के घने कुहिरे सा शीतल अन्धकार पूर्ण तूफान के बीच; उसी दिन की तरह मन के उसी स्थान पर झलमला रहा है।—प्यार करती हूँ।

होती है तथा मैं अंग्रेजी अच्छी और मधुर बोलती हूँ—यह वह मेरी माँ और विनोद से बराबर कहा करता। मुझे वहीं पहले-पहल अपने इन ज्ञानों का गर्व पूर्ण आभास मिला। मैं उसकी कृतज्ञ हुई। प्रारम्भ ही से यों तो विनोद के परिश्रम तथा उत्साह से मैं पढ़ती थी; किन्तु वही पढ़ना मुझे इतना मूल्यवान बना देगा, मैं नहीं जानती थी राधे!

वह हँसी, मैं हँसा। किन्तु मैंने कुछ कहा नहीं। उसने फिर कहा—हाँ फिर मैं आठवें दिन वहाँ से लौट आई।

किशोर गर्मी की छुट्टियों में इनके यहाँ आकर ठहरा। अपने ब्याह की बातचीत मैं और विनोद दोनों ही जानते थे। इसलिये मुझे विनोद से मिलने में झिझक मालूम पड़ती। यद्यपि शादी के लिये अभी इनके बी० ए० होने तक ठहरना था। भेंट होने पर भी मैं अधिक बातचीत न करती। हाँ-किशोर उन दिनों मेरे पास अधिक ठहरता। मुझे परीक्षा के लिये तैयार कराने का व्याज भी उसे अच्छा मिला था। मेरी माँ लड़कपन से भरी उसकी बातें बड़े प्रेम से सुनतीं। उन्हें सभी लड़कों से प्रेम होता। किन्तु स्वयं मुझे धीरे—धीरे उस पर शंका होने लगी। बातचीत के बीच में वह अपने को भूल कर ऐसी मुग्ध दृष्टि से मुझे देखने लगता कि मैं शर्म से गड़ जाती। पर उसने कभी कुछ कहा नहीं। मैं भी कुछ दिनों के लिये अपने व्यवहार को अशिष्ट न बना सकी।

एक दिन—अषाढ़ का वह पहला दिन था, उस दिन आकाश बादलों से काला पड़ गया था। और जोरों की वर्षा हो रही थी, बड़ी-बड़ी बूँदें झम, झम, झम—मेरे आँगन में झड़ रही थीं!

आह ! उस दिगन्तव्यापी झन्कार के भीतर मैं चुपचाप बैठी कुछ पढ़ रही थी। सहसा किशोर के आने से मैं चकित हो उठी। देखा तो उसकी आँखों में आँसू की बूँदें अड़ी थीं। और उसका चेहरा लोहित हो उठा था। मैंने पूछा—क्या है किशोर !

उसके मन की जैसे गाँठ खुल गई। आँसू की निर्मल बूँदें जो अब तक रुकी पड़ी थीं, बिखर पड़ी। मैं स्तम्भित हो गई। उसने कुछ उत्तर न दिया। मैंने अपने स्नेह बल से उसे आदेश दिया—किशोर कातर न बनो। बताओ बात क्या है ?

मेरी उद्विग्नता देख कर उसे जैसे साहस मिला, और जैसे मेरी आज्ञा पालने भी चला हो। उसने रुआँसे मुँह गर्व से कहा—मैं अपमान क्यों सहूँ श्यामा ? मुझसे ही जलना ? विनोद...।

वह चुप हो गया। मैं काली पड़ गई। मेरी नस-नस फूल कर आपस में जैसे गूँथ उठी—ऐसा दर्द जान पड़ा। मैं सब कुछ उसके इतना ही कहते समझ गई। फिर भी उसे तो कुछ उत्तर देना ही ठहरा। मैंने कहा—कोई तुम्हारा अपमान क्यों करेगा ? तुम आज ही कल नहीं।

उसने मेरी बात काट कर अपनी आँख के आँसू पोछते हुये कहा—नहीं मैं अपने हृदय से छल नहीं कर सकता, किसीकी सहानुभूति पाने के लिये अपने हृदय की प्रवृत्ति चोरों की तरह छिपा कर चापलूसी क्यों करूँ ? मैं विनोद का ईर्षा से उत्पन्न शासन स्वीकार नहीं करूँगा।

वह मुझसे ही इसकी स्वीकारोक्ति करवाना चाहता था ! मेरे प्राण को जैसे संकट आ लगा। कैसे छुटकारा पाऊँ ! मन में

यही सोचता था। हताश होकर मैंने कहा—जो कुछ हुआ, उसे भूल कर अपने को इन विरोधों से बचा जाओ।

उसने साहस से कहा—नहीं ? क्या विनोद यहाँ मुझे अपमानित करने को लाया था ? मैं समझ लूँगा। मैं कभी न आता—सच तो यह है कि तुम्हारी स्मृति मुझे यहाँ खींच लाई। न मालूम क्यों जब से मैंने तुम्हें देखा है ; ऐसा अनुभव करने लगा हूँ कि बिना तुम्हारे मैं रह नहीं सकता। इसी लिए श्यामा ! आ गया था। इधर कुछ दिनों से मैं देख रहा हूँ, उसका मुझसे व्यवहार खिंचा रहता है। और आज तो उसने अपने मन का भाव व्यक्त ही कर दिया—कि, वह मेरा खून चूस लेगा। ओह, तुम उसके हाथ बिक गई हो ? मैं भी वही...।

मैं इन बातों को सुनना नहीं चाहती थी। साहस से मैंने उसे रोक कर कहा—देखो किशोर ! तुमको मेरा अपमान नहीं करना चाहिये। तुम और विनोद तो सहपाठी हो, फिर इस आपस के झगड़े को मुझसे कहना ही तुम्हारी हीनता है। और इसमें मैं कर ही क्या सकती हूँ।—कह कर मैंने वहीं बात शेष कर देनी चाही। उसे विदा देने ही के लिये मैंने अपनी दृष्टि उस पर डाली थी।

मेरे देखते ही वह अपने दोनों हाथ जोड़, फूट फूट कर रोने लगा। मुझसे किसी की रुलाई देखी नहीं जाती। मैं उद्विग्न हो उठी। उसे मैंने अपने हाथों का सहारा देकर उठा लिया। उलाहने के स्वर में मैंने कहा—छिः यह क्या ?

उसी समय राधे ! विनोद मेरे दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। उस समय मैं उसका हाथ पकड़े उसे सान्त्वना दे रही थी।

बस। विनोद उस समय कुछ बोले नहीं। चुपचाप चल पड़े। हाय, मैं इन्हें जाते देख कर अपनी सारी लज्जा छोड़ कर पुकार उठी। किन्तु इन्होंने मेरी वह पुकार सुन कर भी अनसुनी कर दी। मैं क्या करती ? कैसा खोटा यह मेरा भाग्य है ? इस अभाग्य को रेखा आज तक मेरे ललाट से कोई न मेट सका। मैं क्या करूँ ? इसी से मेरे पिया रूठे है !

उसने अन्तिम वाक्य हँसते हुये, विनोद की ओर देखकर ऐसे नाट्य कौशल से कहा, कि विनोद के गम्भीर चेहरे पर भी मुस्कराहट की एक हलकी रेखा दौड़ पड़ी। पर मैं तो न हँस सका। वह कौशल जैसे केवल अपने हृदय खोल देने की लज्जा को छिपाने वाला प्रतिकार था। अपने ही से विद्रोह था। जहाँ वह पराजित होकर भी हँसना चाहती थी। कैसा करुण दृश्य था ! उसी हँसी के कौशल ने सारी बात को क्या बना दिया !

मैंने देखा अभी इसको सम्पूर्णता के लिये बीच-बीच में खाली जगह तो भरनी ही है। मैं श्यामा को आज तक जो जानता था, उससे वह कितनी दूर है ? और यह विनोद ! इस कथा का नायक ! इस वैषम्य में साम्य लाने के लिये मेरे प्राण छटपटा उठे। यह उससे जो सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी, उससे आपा करने के लिए भी तो आवश्यक था। श्यामा कथा के अन्त में जैसे विश्राम ले रही थी। विनोद की बात कह कर वह जो अपने मन में अपमानित हो उठी है, उसीसे उसका स्त्री स्वाभिमान जागकर जैसे विनोद से कटुता कर बैठा था। विनोद अथ से इति तक उस बात को कैसी उपेक्षा से सुन गया; इसे जैसे श्यामा अब सोचना भी नहीं चाहती थी। इसी से उस कथा का जो मूल कारण था उसे वह दबा कर बैठ सकी।

मुझे एक ही मार्ग था, मैंने पूछा,—फिर तुमने इन बातों को विनोद से कहा नहीं ?

आज जो श्यामा मेरे निकट यकायक नवीन हो उठी है, इसीलिये बड़ी सरलता से एक-एक बात पूछने की क्षमता मुझे अपने आप ही मिल गई थी। और अब तो फिर नये सिर से मुझे अपने मन मन्दिर में उसकी प्राण प्रतिष्ठा करनी होगी। मेरा आज तक का सारा सम्बन्ध उसके इस करुण कथा की महिमा में बह-गल कर लुप्त हो गया था। तीन वर्ष पूर्व के उस प्रथम परिचय की बात जैसे किसी अगले जन्म का स्वप्न मात्र हो। फिर भी वह भूलने का नहीं।—

मेरे घर के सामने एक बूढ़ा फकीर उन दिनों बीमार पड़, दो-चार ही दिनों में सड़क की धूल फाँकने से आकाश में अपनी आँखें फाड़ कर मृत्यु की राह देखने लगा। मुझे दया आ गई। सोचने लगा—यह जीकर कुछ अधिक सुख पायेगा! ऐसी बात तो नहीं। फिर भी यह दुख, यह हम-सबके देखते पाये, यह किस भले आदमी को सह्य होगा? इसी लज्जा की बात से जैसे मैं उद्विग्न हो गया। उन्हीं दिनों श्यामा—किशोरी के—अनाथ-सेवा सदन की चर्चा मित्रों से हमने सुनी थी। सुना था—सेवाश्रम के बगल में एकधर्मशाला की लम्बी दालान है; जिसमें उन दीन दुखी रोगियों का—जिन्हें सेवाश्रम रोगियों की अधिक संख्या होने पर जगह नहीं दे पाती, वह उन्हें रखकर सेवा करता है। वहाँ संख्या की कैद नहीं। जवाब पाये हुये सभी रोगी वहाँ आश्रय पा जाते हैं। कैसा है उसका अध्यवसाय और परिश्रम? अनेकों बार देखने के लिये सोचा था। एक दिन प्रभात में मैं टहल कर लौटा था, कि उस फकीर को भयानक पीड़ा से कराहते हुये सुना। मेरा दिल

इस आह से मसोस उठा। बस, अभी इसे कहीं पहुँचा देना चाहिये, नहीं तो मैं सोचता ही रह जाऊँगा और यह चल बसेगा; चिन्ता जागृत हो गई। दो कहार और पालकी आई और उसे ले कर चल पड़ी। एक कुतूहल बस उसी अनाथ सेवा सदन में मैं पहुँचा। उसी दिन श्यामा से मेरा परिचय हुआ। फिर तो मैं बराबर जाता था। कितनी तत्परता और सेवा भाव से उसके काम में मैं सहायक होना चाहता था कह नहीं सकता ? किन्तु ओह ! आज ही तो उसने कहा है—राधे तुम भी तो मुझे प्यार करते हो ! मैंने कभी कुछ कहा भी तो नहीं फिर क्या यह झूठ है ! ओह्प...रमात्मा ! कैसी आश्चर्यमय दृढ़ स्त्री है ! मेरी दुर्बलता का कभी तिरस्कार न कर सकी; कैसा इसका साहस है ! मैं मन ही मन क्षण भर में उस समय सब सोच कर सिमट गया। जलते हुए अङ्गारों के समूह की भाँति उसकी पावनता उस समय मुझे जैसे स्पर्श करने लगी। उसके निकट मैं अत्यन्त क्षुद्र जान पड़ने लगा। पर कितनी प्रसन्नता थी, इस अनुभव में। मेरे ईश्वर ने मुझे उसके निकट बालक-सा सरल बना दिया। विनोद उस समय मेरी दृष्टि पथ में न था। इसी से श्यामा ही से मैंने अपनी जिज्ञासा प्रगट की।

श्यामा ने कहा—मनुष्य धीरे-धीरे अपनी परिस्थितियों के अनुकूल रहता और उसी में सुविधा प्राप्त कर लेता है। आदमी अपने लक्ष्य से दूर जा पड़ने पर भी तो एक दिशा की ओर चलता ही है। राधे ! मैंने फिर कई बार उस भ्रम को मिटा देने की चेष्टा की; किन्तु क्या हुआ ! मेरा अपमान कर इन्होंने क्या पाया ! मैंने इन्हें कितने ही पत्र लिखे, किसी का उत्तर तक इन्होंने न दिया। ओह उस रात को मेरी माँ मर रही थी ! उसका

कौन सहारा था। बिना एक पुरुष के तो स्त्री की किसी तरफ भी गति नहीं। मेरे कोई भाई भी तो न था। मेरी माँ ने मन में इन्हें जो समझ लिया था उसी स्नेह के वश मैं इन्हें बुला भेजा। उसे क्या पता था इन दूसरी बातों का, किन्तु उसका तो उस दिन जैसे दिल ही टूट गया। मैं अनाथ थी।

मैं काशी चली आई। यहीं रामकृष्ण मिशन में मेरे चाचा रहते थे। उन्होंने लड़कपन ही में सन्यास लेकर यह व्रत उठाया था। सेवा उनके जीवन का ध्रुव था। मैंने भी उसी मार्ग में जीवन देना अपना कर्तव्य समझा। राधे! फिर भी, यह हृदय सन्तोष न पा सका। डेढ़ वर्ष की बात है एक दिन यहाँ दशाश्वमेध घाट पर मैं घूमने गई थी, मेरे सन्यासी चाचा साथ थे। मैंने वहीं विनोद को एक आदमी से बात-चीत करते हुये देखा। मेरा मन व्याकुल हो उठा। मैंने चाचा का साथ धीरे से छोड़ दिया और इनका पीछा करने लगी। थोड़ी देर बाद जब यह उससे अलग हुये—मैं मिली। उस दिन की इनकी निष्ठुरता भूल सकती हूँ? इन्होंने कहा था—प्रतिज्ञा करो अब मुझे कभी न छेड़ोगी। गङ्गा को साक्षी कर मैंने प्रतिज्ञा कर दी और आश्रम को लौट आई। उसी दिन से सभी मनुष्य मुझे घृणित जान पड़ते हैं। इस सेवा सदन में जो भी आदमी चिकित्सा के लिये पहुँच जाता है उसकी सेवा कर मैं जैसे अपने हृदय का एक दूसरे प्रकार से बदला लेती हूँ। वह बेचारा इसे क्या जानेगा? ऐसी ही ईर्ष्या में मैं जलती रहती हूँ? कब तक मेरे मन का यह मोह नष्ट न होगा नहीं जानती राधे! किन्तु इन अपमानों ने अब हृदय विदीर्ण कर डाला है।

मैं उसकी कथा सुनते-सुनते काँप उठा। अब तो कुछ सुनने

की इच्छा भी नहीं रही। किन्तु विनोद के प्रति एक तीव्रघृणा का भाव उठ खड़ा हुआ। कैसा कठोर है ? समझ में नहीं आया अपने को प्यार करने वाली एक नारी की इतनी उपेक्षा वह कैसे कर सका ?

मैंने उससे बिना कुछ कहे ही जाने के लिए श्यामा से आज्ञा माँगी। विनोद भी मेरे ही पीछे उठ खड़ा हुआ। श्यामा अभिवादन तक न कर सकी।

विनोद ने नीचे उतरते ही मुझसे कहा—राधे आज रात की इसी दस बजे की गाड़ी से मैं पूरब जाने वाला हूँ। मैं यहीं से स्टेशन जाऊँगा। वह चला गया।

विनोद को मैं भूल न सका। श्यामा के मन की पीड़ा उसकी स्निग्ध प्रफुल्लता में भी मेरी आँखों के सामने विरोध की रूप-रेखा अंकित कर देती। किन्तु दिन पर दिन वह धुँधली पड़ती जाती थी। श्यामा ने भी कभी उसके विषय में कोई बात फिर नहीं कही। धीरे धीरे आठ नौ वर्ष बीत गये होंगे।

पिछले साल कुम्भ के मेले में मिशन का एक दल इलाहाबाद गया था। श्यामा भी उसमें सम्मिलित होकर गई थी। मैं भी गया था। कितने ही रोगी, और दबे-कुचले जाकर वहाँ आश्रय पा रहे थे। उनकी सेवा का यथोचित प्रबन्ध उन लोगों ने किया था।

सूर्य डूब रहा था। उसकी किरणों की छाया जल में पड़ रही थी। मैं एक आराम कुर्सी पर लेटा लीडर के पेज उलट

रहा था। कुछ इधर-उधर की खबर जानने के लिये उसी समय श्यामा हाँफती जैसे हुई आकर मेरे सामने खड़ी हो गई।

मैंने पूछा—क्या है भाई।

कुछ नहीं—उसने कहा—उठो, देखो—उसे पहचान सकते हो?

वह बहुत घबराई हुई-सी मुझे जान पड़ी। मैंने कहा—किसे? और उसके साथ चल पड़ा।

रोगियों की कतारें भरी पड़ी थीं, उन्हीं के बीच एक बेड के सामने श्यामा जाकर खड़ी हो गई। वह तो जैसे बहुत दिनों का जीर्ण-शीर्ण कोई बूढ़ा रोगी यहाँ आकर कुचल गया था। मैं क्या पहचानता! मैं उसकी ही ओर देखने लगा। श्यामा ने मुझे असमंजस में पड़े देख कर कहा—यह विनोद जान पड़ता है। तुम पूछ कर देखो न?—वह हट गई थी।

मैंने धीरे-धीरे उसे सहलाना शुरू किया।

थोड़ी देर में वह कुछ चैतन्य हुआ। तब मैंने पूछा—कैसी तबियत है?

बड़ी पीड़ा है,—उसने कहा।

घबड़ाओ मत अच्छे हो जाओगे विनोद!

मैंने उसका नाम उसे ठीक से न पहचान कर भी कहा। नाम सुनने ही से जैसे वह जाग पड़ा। अपनी आँखें खोलकर वह मुझे जानने की चेष्टा करने लगा।

मैं हूँ राधे!—मैंने बतलाया।

आह, भगवन्!—उसने बड़े कष्ट से कहा।

श्यामा को चिकित्सा से तुम शीघ्र अच्छे हो जाओगे।—मैंने फिर कहा।

वह तिलमिला उठा—उसने आह खींच कर कहा—तुम सब मरने भी न दोगे। निर्लज्ज, तुम भी—

उसकी आँखों से पलकों को भेदकर आँसू की धार निकल पड़ी। मैं विचलित हो उठा, यह मरते समय भी कितने भ्रम के भार से दबा हुआ है। मैं श्यामा को खोजने के लिये दृष्टि दौड़ाने लगा; किन्तु वह तो वहाँ न थी। मेरे मस्तिष्क में शून्य भाँय-भाँय कर रहा था।

मैंने कहा—विनोद सब भ्रम है। तुम इन दुश्चिन्ताओं को भूल जाओ।

उसने अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाना चाहा किन्तु वह गिर गया। अब परमात्मा ही उसका समाधान करें तो करें।

———

पगली

पगली—

हुश—

उसने देखा भी नहीं, भाग गई।

गाँव भर के लोगों का स्नेह उसका दुलार करता, किन्तु उसके जड़ मस्तिष्क में उसका कुछ भी मोह न था।

चुनार गङ्गातट पर बसा हुआ एक अच्छा कसबा है। उससे कुछ दूर, निर्जनता की शान्तिमयी गोद में एक कुटिया बनाकर राममिश्र कुछ काल पूर्व रहा करते थे। वे पंडित थे। शास्त्राध्यापन उनका प्रमुख कार्य था। दो-चार छात्र सदैव उनकी सेवा में रह-

कर विद्याध्ययन किया करते थे। पगली उन्हीं की अभागिनी कन्या था।

यह मातृहीना बालिका उनकी शेष सन्तान थी। अतः पंडित जी के हृदय का सम्पूर्ण स्नेह परिचर्या बन कर उसका लालन-पालन करता था। उसके हँस देने पर वे अमृत-पान का सुख लाभ करते थे। उसे किंचित भी दुखी देखकर उनके प्राण सूख जाते थे। हाय री ममता! तू मनुष्य-हृदय में पैठकर सृष्टि को कितनी सजीव और मधुर बना देती है! तेरी क्षमता अनन्त है।

लड़कपन में वह विद्यार्थियों के संग रहकर खेलती तथा पढ़ती थी। शतदल के बीच गुञ्जार करती हुई भ्रमरी के सदृश उसका जीवन आनन्दमय था।

छात्र समुदाय में वंशी उसका समवयस्क था। वह पढ़ने से भी ज्यादा खेलने में और इससे भी अधिक उसके साथ घड़ियाँ बिता देने में आह्लादित रहता था। साथही पंडित जी की पूजा की सामग्री और पाक के लिये क्या चाहिये, इसकी व्यवस्था वह कभी भी न भूलता था।

प्रातः काल जब दोनों अपना पाठ बदाबदी के साथ कंठस्थ करने लगते तो पण्डितजी को इसी मृत्युलोक में स्वर्ग का सुख प्राप्त होता। उन्हें देख वृद्ध पंडितजी की उज्ज्वल आँखें आनन्दाश्रु में डूब जाती थीं और वे प्रेमविभोर हो जाते। वे कहते, बालक देवताओं के आशीर्वाद हैं।

घड़ियों में भाग जाने वाला समय किसे बताकर जाता है? बालिका के शैशवावस्था का अञ्चल जिस दिन धृष्ट यौवन ने

पकड़ा—उसे किसने देखा था ? तुम कह सकते हो, पंडितजी ने। नहीं, उनके समीप तो अभी उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे थे। छात्र ? वे इतने सजग कहाँ ? तो क्या उसके सहचर वंशी ने भी नहीं ? नहीं; वह बेचारा तो मानों वहाँ भूला हुआ था। उसका परिज्ञान वहाँ मूढ़ बना था। बालिका अज्ञात यौवन के मृदुल स्पर्श से चमेली की नन्हीं कली सी रंग पकड़ रही थी। वह अब वंशी पर शासन करती थी।

पंडितजी की कुटिया के सामने एक छोटा सा पुष्पोद्यान था। उससे उनका बड़ा प्रेम था। उसे ये दोनों मिलकर सींचते थे। उसकी समृद्धि के लिये सदा सचेष्ट रहते थे। पर शीघ्र खिलने वाले वृक्षों को वह सदैव अपना लेती थी, उसे अपना कहती थी। इस पर यदि भूलकर भी वंशी आपत्ति करता तो उसे घण्टों उसके कोपानल में जलना पड़ता। पर इससे क्या ? वह तो केवल पढ़ने आया था।

दो वर्ष बाद, समस्त देशव्यापी इन्फ्लूएञ्जा ज्वर का प्रकोप हुआ। इस दरिद्रदेश के प्रायः सभी मनुष्य उससे आक्रान्त हुये। पंडित राममिश्र की पाठशाला में भी दो-चार छात्रों को छोड़कर सभी पीड़ित थे। अन्त में बालिका भी बीमार पड़ी। ग्यारह दिन बाद जब उसने आँखें खोलीं तो उस समय वहाँ कोई न था। केवल शून्य हाहाकार मचा रहा था। वह बच गई थी। कुछ लोग भाग गये और कुछ कराल काल के गाल में बिला गये थे।

यौवन विपत्ति में पागल हो जाता है। वह वैभव का साथी

है। वह अब पूर्ण युवती हो गई थी। देश काल से उसका सम्बन्ध न था, आस-पास कहीं कोई उसका सम्बन्धी न था। वह क्या करती ?

चिन्ताओं का समुद्र, विपत्ति का बोझ, असहाय जीवन और उस पर यौवन का विभ्रम पूर्ण संकोच ! सभी उस पूर्णिमा के चाँद को राहु की भाँति ग्रसने लगे। उन्माद की काली छाया में छिपकर वह हँसने लगी। वह हँसने लगी, जैसे अगाध सिन्धुजल में बाड़व-ज्वाला तल प्रदेश को मथकर अट्टहास करती है। असंख्य उर्मिल रेखायें विड़म्बनापूर्ण जीवन की आकुलता में विलीन हो जातीं। वह रोने लगती, जैसे शरद विभावरी निःशब्द चन्द्रिका में घुल-घुल कर वसुधा का अञ्चल भिगोती है। असहाय जीवन के ज्वार में उसकी सुन्दरता और उद्दाम यौवन कौतुक से हिलने लगे। वह पागल हो गई।

आम्र-मंजरियों के अन्तराल से जब प्रभात-पिकी वसन्तोन्माद से मतवाली होकर कूकने लगती, तब वह भोमा भैरवी-सी वृक्षों पर चढ़कर उससे होड आरम्भ कर देती और 'कुहूकुहू' कर उसे उड़ाकर ही दम लेती। सावन-भादों की घनघोर काली घटा जब अनन्त नीले आकाश में अन्धकार की भाँति छा जाता था, तब वह आँखें गड़ाकर उसे देखती और पगडंडियों पर दौड़ लगाती। उसकी आकांक्षायें विविध लीलायें रचा करती थीं। वह केवल उनमें पुत्तलिका की भाँति नाचा करती थी।

पंडित रामभिश्र की टूटी पाठशाला और उनकी वह प्यारी फुलवारी नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी। केवल दस-पाँच फलों के वृक्ष

शेष रह गये थे। इन्हीं वृक्षों के नीचे अब उसका आवासस्थल था। गाँव के दो-चार भले आदमी जो पंडित जी के पूर्व शिष्य थे, अथवा उनसे उपकृत थे, उसे खाने-पीने को दे दिया करते।

वंशी भीरू न था, परन्तु जब सभी पाठशाला छोड़ कर पलायन करने लगे तो स्वभावतः ही उसे भी प्रचंड महामारी का भय उत्पन्न हुआ। इसलिये गुरु-सेवा का ध्यान छोड़कर अपने अन्य सहयोगियों के साथ वह भी पाठशाला छोड़कर भाग गया। उसके माता-पिता जीवित न थे, वह अपने चचा-चाची का आश्रित था।

अभिमानी वंशी कठोर परिश्रम करके भी वहाँ सुख पूर्वक रहता, यह उसकी नियति को स्वीकार न था। बेचारा प्रति दिन तिरस्कृत होकर रुँधे कंठ से रोटी का टुकड़ा गले के नीचे उतारता था। दिन भर की मजूरी के बदले पेट भर अन्न भी जब उन लोगों को अपने आत्मीय के लिये देना छाती के बोझ-सा मालूम पड़ने लगा, तब वंशी ने मिर्जापुर आकर एक डाक्टर की रसोईदारी कर ली।

वंशी के जाने के साल-डेढ़-साल ही बाद डाक्टर साहब बदल कर चुनार आ गये। यहाँ आने के दो-चार दिन बाद, वंशी एक दिन गङ्गा नहाने गया। एकाएक उसके दिल में आया, चलें, अपनी पाठशाला तो देख लें। परन्तु पाठशाला कहाँ थी? उसे तो कुटिल काल ने अपने अनन्त उदर में छिपा लिया था। उसकी स्मृति-स्वरूप वहाँ कुछ फटे-चिथड़े इधर-उधर पड़े थे। आदमी के

व्यवस्थित रूप से रहने का वहाँ कोई चिन्ह न था। हाँ—कुछ चीजें पड़ी थीं, जिससे यह अनुमान किया जा सकता था कि कोई न कोई राही की भाँति कभी-कभी आकर यहाँ अपना डेरा डाल जाता है। वंशी दुखित चित्त से लौट आया। पूर्व स्मृति के कितने ही मनोहर चित्र उसके मानसपट पर अंकित हो रहे थे।

उस दिन अपने काम से खाली होकर वंशी विश्राम करने के लिये व्यस्त था। इतने में उसे कुछ लड़कों का कोलाहल सुनाई पड़ा। थोड़ी देर ही के बाद उसने देखा कि एक सुन्दर युवती; किन्तु पागल स्त्री के पीछे दस-बीस लड़के लगे चले आ रहे हैं और उसे चिढ़ाने के लिए शोर मचा रहे हैं। यह देखकर, न जाने क्यों, उसका मन एक बार अनायास ही काँप उठा। वह कुतूहल से उसी ओर देखने लगा। उसके सन्निकट आनेपर उसके आश्चर्य की सीमा न रही। यह कैसी दुर्दशा! उसने भूलकर भी जिसकी कल्पना न की थी उसे देखकर वह सूख गया।

आगे बढ़कर उसने पगली से कहा—सुनो तो। तुम मुझे पहचानती हो?

अपनी गति में बाधा पहुँचाने वाले की ओर उपेक्षा से देखकर उसने कहा—पहचानती हो... कश्चित... मधुपुर... कुसुम ...देवासुर... तुम...... हाँ—हाँ—हाँ!

वंशी ने उसकी स्मृति को सचेष्ट करने के लिए कहा—तुम मुझे भूल गई। मैं तुम्हारे यहाँ पढ़ता था, मेरा नाम वंशी है, तुम्हें याद नहीं?

वंशी—पगली ने जैसे सहानुभूति से कहा—तुम वंशी...

वेणु ... वीणा ... वृन्दाबन राधा ... गोपी ... कुछ नहीं। हा ... हा हा ...। उसने वंशी का हाथ पकड़ लिया।

लड़के चुपचाप खड़े थे।

वंशी ने फिर कहा—चलो उधर बैठो, मैं तुम्हारे यहाँ रहता था, तुम्हें याद नहीं? कुछ खाओगी?

अरे वंशी, क्या करता है? चल इधर।—उत्तेजित स्वर में किसीने पुकारा।

वंशी ने घूमकर देखा, डाक्टर का लड़का उसे बुला रहा है। उसने संकुचित होकर अपना हाथ पगली से छुड़ा लिया और धीरे-धीरे वहाँ से चला आया। पगली उसकी ओर ताकती रह गई।

पगली जहाँ खड़ी थी, वहीं बैठ गई। फिर जैसे उसका सर्वस्व हाथ से निकल गया हो, वह बच्चों की तरह जमीन पर लोटकर वेदना से फूट-फूट कर रोने लगी। सड़क पर उसे लोट कर रोते देख कर लड़के भी वहाँ से खिसक गये। वह बहुत देर तक वहीं जमीन में पड़ी रह कर रोती रही। दूर से डाक्टर का लड़का सतृष्ण दृष्टि से उन्माद की यह निष्ठुर लीला देख रहा था। अन्त में पगली एक तरफ चली गई।

डाक्टर साहब का लड़का शिवलाल कालेज से एफ० ए० पास कर अब उहीं के पास रहा करता था। उसने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया था। उसकी प्रकृति बहुत उद्धत थी। दिन भर बेकार बैठा रहता, कभी वंशी बजाता, उपन्यास पढ़ता या किसी से युद्ध ठान लेता था। इधर कुछ दिनों से पगली ही उसके मनोरञ्जन की सामिग्री बन गई थी। वह उसे देख लेने पर उसके साथ अपनी उच्छृङ्खलता का व्यवहार करने से बाज न आता था।

वंशी भय से कुछ नहीं बोलता था। परन्तु पगली के प्रति शिवलाल का नीच व्यवहार कभी कभी उसकी सहनशीलता पर बेतरह आक्रमण कर देता था।

उस दिन सबेरे ही सावन की घटा बरस चुकी थी। बादल अब भी आकाश में छाये हुए थे। प्रभाकर अपनी अयुत किरणों द्वारा उस अन्धकार को बाँध रहा था। बड़ी सलोनी छटा थी। पगली ने देखा,—सामने की लता फूलों में छिपी मोतियाँ बिखेर रही है। वह उसके पास चली गई। फूलों के कितने ही गुच्छे तोड़-तोड़ कर वह अपने खुले-बिखरे बालों में बाँधने लगी। उसने जब अपने शृङ्गार को बिना देखे ही पूर्ण समझ लिया तब एक ओर को चल पड़ी।

गाँव के जिन लड़कों ने उसका यह नूतन शृङ्गार देखा, वे आज अपने आनन्द के लिए वर्षा के कारण उसका पीछा न-कर सके। पगली अबाध गति से गाँव की गलियों में सजीव यौवनोन्माद की तरह विचरण करते-करते एक परिचित स्थान पर जाकर खड़ी होगई। वह था, उसके पागल को कभी-कभी स्नेहाश्रु से सींचने वाली श्यामा के घर का दरवाजा!

विधवा श्यामा उस गाँव की बड़ी मुखरा स्त्री थी। बिना कलह के उसके पेट का पानी पचना मुशकिल था। गाँव की बहुत कम स्त्रियों से उसका प्रेम था। परन्तु पगली को न जाने क्यों वह बहुत प्यार करती थी। कभी-कभी उसे भोजन और वस्त्र

भी दे दिया करती थी। उस दिन उसे देखकर उसने कहा—कहाँ जाती है री! आज तो तुझे देखकर देवता भी ललच जाँयगे। यहाँ आ, तेरे माथ में तेल दे दूँ।—कहकर श्यामा ने पगली का हाथ पकड़ लिया और घसीटती हुई उसे अपने घर में ले गई।

शायद सरल स्नेह का शासन पागलपन को भी वशीभूत कर लेता है। पगली चुपचाप स्नेहमयी श्यामा के साथ उसके घर चली गई। श्यामा ने उसने रूखे केशों में थोड़ा सा तेल डाल दिया। उबटन से उसका मुँह मल दिया। यौवन का स्वाभाविक सौन्दर्य शृंगार की शान पर चढ़कर मानों और भी चमक उठा। इसके बाद श्यामा ने कुछ खाने को लाकर पगली के सामने रख दिया। पगली खाने लगी और श्यामा साश्रुनेत्रों से उसकी ओर देखने लगी। श्यामा के हृदय में उस समय मातृ-स्नेह की आँधी चल रही थी। उसकी एक मात्र कन्या—उसके निष्ठुर वैधव्य का सहारा—मोती, अगर आज जीती होती तो वह भी इसी पगलो के बराबर हुई होती। श्यामा बैठी बैठी यही सोच रही थी।

श्यामा की मोहनिद्रा अभी टूटी न थी, कि एकाएक पगलो खाना छोड़कर उठ खड़ो हुई और खिलखिला कर हँसती हुई गंगा तट की ओर चलो गई। श्यामा ने पकड़ने की चेष्टा की, परन्तु वह गायब होगई।

कगारे पर शिवलाल बैठा हुआ, तन्मय भाव से बाँसुरी बजा रहा था। उसके कामुक-हृदय में सावन की घनघटा वासना के तूफान की सृष्टि कर रहो थी। भरी गंगा की लोल लहरों

पर थिरकती हुई उसकी बाँसुरी की कोमल-ध्वनि मानों करुण स्वर में पुकार रही थी,—सावन में चले आना रे साँव-लिया !—वह कजरी अलाप रहा था। नदी उसके समीप से कल-कल छल-छल बहती चली जा रही थी।

पगली ने ऊपर से तीर की तरह आकर उसके हाथों से वंशी छीन कर नदी में फेंक दिया।

शिवलाल चकपका गया था । उसने सँभल कर किञ्चित क्रोध-मिश्रित स्नेहसे उसे देखकर कहा—पाजी तूने मेरी वंशी फेंक दी ! अच्छा ठहर, अभी मैं इसका मजा चखाता हूँ ।

मजा ? हाः हाः हाः......!—हँसती हुई वह एक दूसरे शिला-खण्ड पर जाकर बैठ गई और बड़े गौर से सुरधुनि का कलकल गान श्रवण करने लगी।

निर्जन नदी किनारे पूर्ण यौवना असहाया पगली को देखकर शिवलाल के पापी हृदय में वासना की ज्वाला धधक उठी। वह बाँसुरी का भीषण बदला लेने की इच्छा से काँपता हुआ पगली के पास पहुँचा ।

बता, तूने मेरी बाँसुरी क्यों फेंकी ? अच्छा, एक बात मानेगी ? अरी ओ पगली !—शिवलाल ने उसके बहुत पास जाकर कहा।

पगली खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने एक रोड़ा गङ्गा में फेंक कर कहा—वह, बही जा रही है !

कहाँ बही जा रही है रे पगली ? अब मैं क्या बजाऊँ ? मन चाहता है...।—वह उसके समीप आकर कहने लगा।

पगली अपना मुँह दूसरी ओर करके नदी का प्रवाह देखने लगी। शिवलाल सतृष्णा दृष्टिसे उसे देख रहा था। सचमुच

पगली के भरे हुए यौवन-ताल में उसका रूप इतराता हुआ तिर रहा था। आज वह कुसुमाभरण-भूषिता वनदेवी की तरह अपूर्व सुन्दरी मालूम पड़ती थी।

अच्छा पगली, तू वंशी को प्यार करती है?—उसने ईर्ष्या से उसे छेड़ कर पूछा।

पगली ने घूमकर उसका मुँह थाम लिया और हँसने लगी। शिवलाल अपने दुर्बल मन को काबू में न रख सका। उसने पगली का हाथ पकड़कर कहा—इधर देख, अभागा वंशी कुछ नहीं जानता, मूर्ख, सुन, मेरी बात......।

पगली का मन कहीं दूसरी जगह चला गया था। वह शिव-लाल का हाथ झिटक कर अलग खड़ी हो गई। क्रोधसे उसका चेहरा तमतमा गया था।

उसी समय वंशी भी डाक्टर साहब की बूढ़ी माता के नहाने के लिये जल भरने की इच्छा से हाथ में पीतल का कलशा लिये हुये आ रहा था। शिवलाल की लम्पटता की कहानी वह बहुत बार सुन चुका था। पगली के प्रति उसका कुत्सित मनोभाव भी उससे छिपा न था। उसने जब इन दोनों को यहाँ देखा, तभी उसका मन काँप उठा। वह पैर बढ़ाये हुए शीघ्रता से आ रहा था। तब तक युवक ने अपने बाँहु पाश में पगली को जकड़ लिया। पगली अपने पूरे बल से उसे झिटक कर अलग खड़ी हो गई। शिवलाल फिर उसे पकड़ने के लिये लपका। वंशी यह दृश्य देख कर क्रोध से आग-बबूला हो गया। उसने वहीं से कड़क कर कहा—बस, खबरदार!

यह कहकर वह सचेष्टता से पगली के पास आकर खड़ा हो गया। पगली उसके आश्रय में निर्भीक खड़ी थी।

शिवलाल ने वंशी को डाँटकर कहा—अलग हट! और फिर लपक कर पगली को पकड़ना चाहा। वह भय से भगी और गङ्गा की गम्भीर धारा में कूद पड़ी! वंशी व्यग्र होकर एक क्षण तक देखता रहा। पर जब उसने देखा कि पगली ऊभचूभ हो रही है तो वह भी कूद पड़ा।

नदी का दुस्तर वेग और भी तीव्रतर होकर बह चला। अनन्त जल-राशि में वे दोनों एक दूसरे को देखते बहे चले जा रहे थे।

मालती

अभो प्रभात को किरणें पीलो थीं । दूर—आकाश की निलीमा में काले धब्बों की तरह फैले हरियाली के झुरमुट में उलझा बालारुण अभी उठ न पाया था। किन्तु उसके प्रकाश की पीली छाया मालती की अटारी पर चमक उठीं, दीवारें हँसने लगीं। मालती अन्यमनस्क थी। उसका आनन्द जैसे लज्जा का आवरण लिये था। वह निस्सहाय हो रही थी।

मालती विद्यालय की छात्री है। उसकी विद्या ने उसके यौवन को कोमल बना दिया है। स्निग्ध रूप-रेखायें उसे बड़ी चतुरता से सँभाले थीं। पुस्तकें उसकी सहचरी थीं। किन्तु, आज

वे रूखे कागजों की हृदय के रक्त-मांस से शून्य वर्ण मालाओं के मरीचिका समुद्र निष्फल जान पड़े। वह विकल थी।

मालती।

मालती चौंक उठी। यह उसकी चाची की आवाज थी। वह झट उठ खड़ी हुई और बरामदे में आगई।

चाची कैसी तबीयत है?—मालती ने प्रश्न किया।

उसकी चाची आँगन में जैसे थक कर बैठ गई थी। वह आज दुखी-सी दिखलाई भी पड़ी।

बेटी, अच्छी हूँ। मालती...।—कहते चाची की आँखें भरभरा उठीं। कण्ठ भर आया। आगे वह कुछ कह न सकी।

क्या है चाची? तुम घबराई-सी क्यों हो??—कहती हुई मालती नीचे उतर आई। वह अपनी चाची के पास बैठ कर उसे सहलाने लगी थी।

मेरी तबीयत अच्छी है बेटी। इस शरीर का पाप जब तक भोग न लूँगी, तबतक न जाने कितना दुख झेलूँगी और तुम सब को दूँगी? विधाता रूठा है, नहीं तो मुझे जी कर क्या करना है? —चाची ने बहुत दुख से कहे।

तुम अपने को क्यों व्यर्थ कोसा करती हो?—मालती ने प्यार से तुनुक कर कहा—यह भी कोई आदत है चाची?

अपने भाग्य बेटी।—चाची ने कहा—तुम्हारे बाप बीमार हो कर शहर ही में रह गये। तिलक चढ़ाया हुआ लौटा दिया गया। —चाची मालती को अपने हाथों में कस कर जोर से रो पड़ी।

मालती लज्जा से काली पड़ गई थी। उसके मन में जो

आघात लगा था उससे आँखों के सामने अन्धकार और माथ पर पसीने की बूँदें उभर आईं।—चाची...चाची—मालती पुकार उठी। वह जानबूझ कर अपनी चाची के वक्षस्थल में छिपी जा रही थी।

ओह...बेटी, उसने बड़ा धोका दिया। ईश्वर उससे समझें। —चाची क्रोध में बकती जारही थी।

मालती ने उनका मुँह बन्द कर दिया।

चाची अपना दुर्भाग्य है!—मालती ने अपने को सँभाल कर कहा।—हम किसी को क्यों दोष दें।—फिर कुछ रुक कर उसने कहा—बाबूजी को यहीं बुलवा लो चाची। वे मुझसे दूर रह कर कैसे अच्छे होंगे?—मालती ने चाची की ओर दृष्टि गड़ा कर कहा।

चाची ने उसे सान्त्वना देने के लिये बड़े धैर्य से कहा—बेटी, वे दवा लेकर खुद चले आयेंगें। मैं अभी पालकी भी भिजवाती हूँ।—कह कर वे उठ खड़ी हुईं और बोलीं—देख, अगर तू व्यर्थ कुछ भी सोच कर मेरे मन को दुख देगी, तो तुझे बड़ा पाप होगा। बेटी! तेरा, तेरे बाबूजी का और मेरा ही कोई अपमान कर सके ऐसा कोई नहीं रानी! तू कुछ भी दुख न मानना। —चाची उसके सिर पर हाथ रख कर उसे सान्त्वना दे चल पड़ी।

चाची के चले जाने पर मालती का सारा स्वप्न भंग हो गया। एक अद्भुत जड़ अवसाद पहाड़ की तरह उसकी छाती पर

जैसे जम गया हो। वह विकल भी नहीं थी किन्तु; स्वस्थ कहना तो पाप ही होगा! उसकी निश्चल पुतलियाँ कोठे के छाजन पर स्थिर थीं। उसमें जैसे एक चित्र था।—

एक दिन प्रातःकाल उसके पिता के पास एक युवक आया। उसने विज्ञापन पढ़ा था। ब्रजनन्दन पूछा—तुम शादी करने को तैयार हो?

उसने दृढ़ता से कहा—हाँ।

फिर भी उन्होंने पूछा—तुम्हारे घरवाले या और कोई यदि आपत्ति करें,—लांछित करें, तो तुम अविचलित रहोगे?

उसने कहा—मैं सब समझ कर आया हूँ। आप में दोष हो सकते हैं किन्तु लड़की विशुद्ध है। हम कुलीनों ही का तो यह धर्म है कि किसी कुलीन घर की लड़की का किसी दूसरे के आचरण के कारण अपमान न हो—वह अमर्यादित कुल में न जा पावे।

ब्रजनन्दन प्रसन्न हो उठे। उन्होने कहा—तुम्हारे भी कुछ प्रश्न है?

युवक ने कहा—मैं स्वयं लड़की से स्वीकृत प्राप्त करूँगा।—अपनी भावना में दृढ़ और दृप्त युवक तेजस्वी जान पड़ने लगा।

मालती ने उसे तभी देख लिया था, जब कि उसने दरवाजे पर से उसके पिता को आवाज दी थी। वह उसी के विद्यालय का छात्र था। उसकी निरीह मुद्रा विद्यालय में कौतुक की वस्तु थी। मालती ने और कभी भी उस पर ध्यान न दिया था। किन्तु आज उसने देखा कि उसके उन्नत ललाट में एक प्रतिभा है। वह आदि से अन्त तक सभी बातें सुन रही थी। जब उसने कहा कि ब्याह के लिये मैं स्वयं स्वीकृत प्राप्त करूँगा, तब वह काँप उठी। धीरे से हट कर वह अपनी कोठरी में आकर लेट रही।

न जाने कैसी एक लज्जा आज पहिले पहिल उसके मन को घेरने लगी।

उसी समय उसके पिता ने आकर कहा—बेटी, एक उपयुक्त युवक ब्याह के लिये आया है। तुम्हें उसे देख कर स्वीकृति देनी चाहिये।

उसका मन एक अपरिचित की भाँति स्तब्ध था। मालती निरोह थी। वह उठ खड़ी हुई। उसके पिता, इसकी लज्जा, संकोच या किसी भी असंगत आचरण के कारण असुविधा में न पड़ जावें इससे वह सचेष्ट थी। वह चुपचाप चली गई। आज उसके पिता को जो काम करना पड़ा था, उसमें एक माँ की चेष्टा मालती ने स्पष्टतः अपने पिता के मुख पर देखी! उसकी आँखें भर उठीं।

मालती बाहर के बरामदे से लौट कर अपने एकान्त कमरे में अपने को परखने लगी। उसका हाथ खाली जान पड़ने लगा। वह कहीं जैसे कुछ भूल आई थी।

किन्तु यह उसकी भूल थी। उसके पास तो बिलकुल एक नई चीज थी। वह सब कुछ भूल कर उस युवक को सोचने लगी थी। उसकी विचारधारा ने उसे एक नये दृष्टि कोण से परखा। वह गम्भीर है इसलिये सीधा जान पड़ता है। उसके विचार भी प्रौढ़ हैं, तभी तो वह सारे समाज का आक्रमण फूल की तरह ग्रहण करने की लालसा में धैर्य से खड़ा है। मालती के मन का सौन्दर्य उस की अभिव्यक्ति में जाग उठा। युवक की आँखें अपनी सीमा में गम्भीर, भौंहें सीधी और आकृति सौम्य जान पड़ी।

एक अपरिचित युवक का रूप-सौन्दर्य और व्यक्तित्व उसके

मन में जाग उठा। वह उसी को खोज रही थी। उसने जाते समय उसकी चाची से आशीर्वाद ग्रहण करना चाहा था। उसका मन माँ-माँ कहता जहाँ खेल रहा था; वहीं जाकर वह खड़ा हो गया। मालती स्नेह से जैसे उससे लिपट पड़ी। उसने जैसे उसके कंठ से भी वही स्वर सुना था।

मालती उसी क्षण से उसे सोचने लगी थी। वह उसके हृदय को मनोहर जान पड़ा। रह-रह कर वही एक ही चित्र उसके मानस पटल पर उदित होने लगा। कितने रूपों में वह आता? मालती उसकी इस निपुणता पर रीझ रही थी।

आज तभी तो मालती अवाक रह गई। सचमुच मैंने स्वप्न देखा है। आदि से अन्त तक सब उसके सामने चित्र की भाँति स्पष्ट हो उठा। वह सोचने लगी, यह कैसा भ्रम है? विधाता ही अपमान कर गया। उसका हृदय शून्य की भाँति अचिन्त्य हो उठा। उसके दुख का अकेलापन पीड़ा दे रहा था। उसे चाची की लज्जा, पिता का विषाद आकुलित करने लगा।

चाची के चले जाने पर वह रो उठी।

मालती की माँ उसे छ मास की छोड़ कर मर गई थी। उसका लालन-पालन उसकी बुआ ने किया था। मालती के पिता ब्रजनन्दन आर्य समाज की पद्धति से एक विधवा ब्याह लाये—वही मालती की चाची हैं। मालती उन्हें अपनी माँ की तरह मानती। चाची का हृदय बड़ा स्नेह-परायण है। उन्हीं के हृदय को सान्त्वना देने के लिये मालती को अपने पिता के यहाँ रहना पड़ा।

मालती के ब्याह के सम्बन्ध में जब लोग बातें चलाने लगे तब उसके पिता भी चिन्तित हुये बिना न रह सके। मालती युवती भी हो रही थी। यद्यपि मालती की शिक्षा समाप्त नहीं हुई थी फिर भी चाची के हठ से उसके पिता विरक्त न रह सके।

मालती की शादी में कम अड़चनें न पड़ीं। यद्यपि वह कुलीन घर की बेटी थी; किन्तु समाज दूर ही से उस विधवा चाची की ओर अँगुली उठा देता। ब्रजनन्दन ने सारी दिशायें खोज डालीं, अपमानित हुये, समाज में सिर ऊँचा रखने लायक कहीं कार्य सिद्ध न हुआ। वे अपनी बहिन तथा और रिश्तेदारों के दबाव के कारण मालती की शादी के लिये आर्य पद्धति ग्रहण भी न कर सके। ब्रजनन्दन ने आखिरकार पत्रों में विज्ञापन छपवाया जिसमें अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी और उपयुक्त वर से पढ़ी-लिखी मालती की शादी की बात कही। विज्ञापन के बाद एक कुलीन युवक आकर शादी तै कर गया।

ब्रजनन्दन अपने समाज के सभी लोगों को लेकर तिलक चढ़ाने गये। तिलक भी चढ़ा किन्तु वह युवक—विश्वामित्र—अपने विरोधियों की उपेक्षा न कर सका। वह उनके विरोध के एक साधारण धक्के ही से गिर पड़ा। उसने तिलक लौटा दिया। उस भरे समाज में इस असह्य अपमान को पी जाना ब्रजनन्दन के आत्माभिमानी हृदय ने जाना ही न था। वे कटे-वृक्ष की भाँति वहीं गिर पड़े।

तीसरे दिन ब्रजनन्दन घर लाये गये। उनके शरीर में अभी भी ज्वर था। आँखें लाल, हड्डियों में पीड़ा और नसें फटी पड़ती थीं। वे दर्द से कराह रहे थे। उनकी पीड़ा असह्य थी।

मालती ने बड़ी सेवा की। ब्रजनन्दन जिस अपमान से चोट खाकर गिरे थे उसका कारण तो मालती ही थी। इस पीड़ा से उसकी वेदना तीव्र थी।

उसकी संकुचित प्रतिमा से ब्रजनन्दन अनभिज्ञ न रहे। वे ज्वर से मुक्त होने पर भी दिन भर पड़े रहते। मालती बैठी पंखा झलती, चाची बराबर हाल पूछती, पर वे जो साधारण-सा उत्तर दे देते उससे भिन्न उनके पास जैसे कोई बात न थी।

मालती क्या करें?

मालती ने इधर जो अपना सम्पूर्ण हृदय एक युवक की कल्पित भावना से भर लिया था, जिसमें उसीका दुख बजता, उसीके विचार प्रवाहित होते और उसी का स्वप्न सफल होता, वह तो एक ही झिटके में निष्फल हो गया था। उसने देखा कि जिस बसन्त के उपवन में डाल-डाल पर उड़ कर वह कोकिल का अलाप ले रही थी वह केवल दग्ध भूमि है। अन्धकार से चित्रित उस उजाड़ खण्ड में उसकी चेतना चोट से बिलबिला उठी। वह कैसे यहाँ चली आई? पिता दूर, चाची संकुचित, वह क्रोध से अपने को धिक्कारने लगी।

ब्रजनन्दन स्वस्थ हो रहे थे। किन्तु उनका अन्तर विक्षुब्ध रहता। वे अभी चारपाई ही पकड़े थे। एक दिन सहसा नवीन आकर खड़ा हो गया। उसका घबराया, व्याकुल मुख देखते ही मालती ने जान लिया कि वह बाबूजी की बिमारी का समाचार सुन कर दौड़ा आ रहा है।

वह उसे देख ही रही थी कि चाची ने वेदना भरे स्वर में कहा—आ बेटा बैठ। तू तो था नहीं। इधर ये बड़ी बिमारी पा गये। अब तो अच्छे हो रहे हैं।—चाची ने ब्रजनन्दन की ओर दिखा कर कहा।

आते ही मैंने सुना चाची—नवीन ने बतलाया।—अभी तो मैं भी चला आ रहा हूँ।—कह कर वह बढ़ आया।

ब्रजनन्दन के शरीर को देख कर उसने कहा—अब बुखार तो नहीं जान पड़ता।—कह कर वह वहीं उनके पास बैठ गया।

हाँ, बुखार तो अब नहीं आ रहा है।—चाची ने कहा।

अब तो आप अच्छे हो गये।—ब्रजनन्दन ही से उसने कहा—रही कमजोरी वह आपके बलवान हृदय के सामने इस शरीर में कितने दिन रहेगी?—कह कर वह हँस पड़ा।

उसकी बात सुनकर ब्रजनन्दन के होठों पर एक रूखी मुस्कराहट दौड़ पड़ी। उन्होंने कहा—हाँ, अब तो अच्छा हो चला नवीन! तुम तो मजे में रहे।—उन्होंने एक नये उत्साह से पूछा।

मजे से रहा।—नवीन ने उत्तर देकर मालती की ओर देखा।

मालती चुपचाप बैठी उसीकी ओर निहार रही थी। उसने नवीन को अपनी ओर देखते देख कर पूछा—कितने दिन रहोगे?

अभी रहूँगा मालती।—उसने उत्साह से कहा—एक माह के लिए आया हूँ।

मालती को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता हुई।

ब्रजनन्दन ने भी कहा—बड़ी अच्छी बात है नवीन।

नवीन इसी गाँव का रहने वाला है। मालती और नवीन दोनों में लड़कपन ही से स्नेह था। दोनों ने साथ-साथ खेले थे। नवीन को इस घर में कोई संकोच न था। ब्रजनन्दन के समीप भी उसने अपनी प्रतिभा और प्रेम के कारण सौहार्द्र स्थापित कर

लिया था। इधर दो साल से नवीन एक स्कूल में मास्टरी कर रहा था, इससे वह वहीं रहता।

ब्रजनन्दन ने कहा—यहाँ का काम भी तो सिलसिले से नहीं चल रहा है।

हाँ—चाचा! इसीसे तो आया हूँ। जो व्यवस्था बतलाओ वही करूँ। नहीं तो दोनों बिगड़ते नजर आते हैं।—कह कर वह ब्रजनन्दन की ओर मुड़ गया।

तुम्हारी गृहस्थी भी उजड़ी हुई है। अब ब्याह कर लो नवीन। —ब्रजनन्दन ने कहा। उनकी आँखें छलछला उठीं थीं।

विचार तो है।—सिर नीचे किये ही कह कर वह कुछ सोचने की मुद्रा में रह गया।

मालती जैसे गड़ गई। उसे जान पड़ने लगा कि नवीन जैसे उसके अपमान की सारी कथा सुन आया है।—मालती का भी ब्याह होने वाला था। पिता का उपहास! अपने चिर सहचर के ब्याह को बात उसके ही मुँह से सुन कर प्रसन्नता की जो हँसी उसके होठों पर आ गई थी वह उसी के निश्वास से झुलस गई। वह न जाने क्यों उठ खड़ी हुई।

उसके खड़े होने से नवीन की विचार शृंखला टूट गई। उसने देखा, मालती जैसे शून्य में खड़ी है और ब्रजनन्दन उदास। वह कुछ कहना ही चाहता था कि चाची ने आह भर कर कहा—बेटा, इस कुल की कलंक मैं न जाने कब तक इस घर में शुभ दिन न आने दूँगी।—आँसू गिराते हुये वह मालती को देखने लगी।

मालती पसीने से भींग उठी। वह बड़ी शीघ्रता से एक परिवर्तन की तरह दूसरी ओर चली गई। उसके लिये जैसे वहाँ स्थान ही नहीं था।

नवीन तिलमिला उठा। उसने देखा, ब्रजनन्दन की आँखों में आँसू भरे हैं। उसने कहा—चाचा ..।—उसकी आगे जबान रुक गई। ब्रजनन्दन उसकी ओर देखने लगे थे।

एक आज्ञा दोगे ?—नवीन ने पूछा।

क्या नवीन ?—वे आश्चर्य में थे।

मालती से मैं ब्याह करूँगा ?—नवीन ने उत्तर दिया।

तुम ?—चाचो ने पूछा।

हाँ—मैं ! मेरी माँ भी चाहती थीं। वे एक ही जगह की बात होने से असमंजस में पड़ो रह गईं। नहीं तो उनकी आन्तरिक इच्छा थी। मैं तुम्हारी सेवा के लिये अपात्र भी सिद्ध न हूँगा चाची। तुम अब दूसरों के दरवाजे भटक कर मुझे वञ्चित न कर सकोगी ?—नवीन ने कह कर ब्रजनन्दन की ओर देखा।

उनको आँखों से आँसू बह रहे थे। वे उठ कर बैठ गये। उन्होंने कहा—बेटा, हमारा समाज बड़ा भयंकर है।

होगा—नवीन ने उपेक्षा से कहा—हम मनुष्यों ही का तो समाज है। हम स्वयं उसका निर्माण करेंगे।

ब्रजनन्दन उससे लिपट कर रोने लगे। उन्होंने कहा—तुम जो चितउ समझो नवीन ! हमने तो वही किया जिसे पुण्य समझा आह...तुम !

जुग-जुग जीवो राजा। चाची ने भरे कण्ठ से आशीष दिया।

नवीन उठ कर खड़ा हो गया। उसने हँस कर कहा—चाची तुम्हारा आशीर्वाद बहुत है। अब चलता हूँ शाम को आऊँगा।—कह कर वह आँगन में आ गया। मालती उसकी पद्ध्वनि सुन कर सजग थी।

चलता हूँ मालती। तुम से आज्ञा लेने आया था।—नवीन ने उसे देखते ही कहा।

अच्छा भाई। फिर आना।—मालती ने स्नेह से कहा।

भाई, नहीं—स्त्री-पुरुष! अब हम-दोनों एक बार इस रूप में खड़े होकर समाज को कठोरता को परखें मालती! तुम दृढ़ रहना।—नवीन ने बड़े उत्साह से कहा।

मालती अवाक् थी। उसके जीवन-पोत ने जैसे प्रकाश-स्तम्भ देखा। उसकी दृष्टि निश्चल थी।

दो वर्ष पश्चात!

सन् १९३० भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक अपने नवीन उथल-पुथल में आन्दोलित था। आत्म-यज्ञ का वह सामूहिक रूप किसी भी शताब्दी को कहीं उपलब्ध नहीं। सच्चे नेता जाग चुके थे। उनके आकर्षण में झींमता-अलसाता कौन नहीं बढ़ आया? जनता का वह विराट प्रदर्शन विलक्षण चेतन

मय था। नवीन नाच उठा, उसके प्राण आतुर हो उठे। उससे रहा न गया। उसने मालती से कहा—चलो हम लोग भी चलें।

मालती नवीन का आदर करती थी। तन-मन से वह उसके हृदय के समीप रहने की चेष्टा करती थी। ब्याह के पश्चात नवीन उसे जो अनेक सुविधायें देकर अपने को कष्ट पा रहा था उससे मालती का मन उसकी आज्ञायें लेने को दौड़ा करता। किन्तु उसमें यौवन की किलकारी नहीं थी।

नवीन इससे अनभिज्ञ नहीं था। वह सोचता—क्या मैंने कहीं भूल की है ? नहीं। वह तो मालती को उसके बचपन से देखता है। पहचानता है। यह मन का भ्रम है। उसे सन्तोष था; इसी से आज जब उसके मन में एक ननीन उत्साह उमड़ने लगा, तब उसने निःसंकोच हृदय से अपनी बात मालती से कह दी।

मालती ने कहा—सच ! बड़ा अच्छा होगा।

नवीन ने उसे आलिङ्गन देकर चूम लिया।

मालती के कपोलों पर लज्जा की लालिमा दोड़ पड़ी थी। उसने कहा—मैं बाबू जी को देख भी सकूँगी।

दोनों इसे सोच कर प्रसन्न हो उठे। ब्रजनन्दन के स्वास्थ्य पर उधर जो धक्का लगा था उससे वे कभी स्थिर न रह सके। उनका स्वास्थ्य प्रायः खराब रहता। मालती उनकी सेवा में यथेष्ट न रह पाती इससे उसके मन में उनके प्रति एक चिन्ता बनी ही रहती। नवीन ने उसे कभी बन्धन में नहीं डाला था। किन्तु स्वयं मालती नवीन की सुविधा के लिये अपने मन को दबाये रही। पर अपने पिता की इस अकेली लड़की के मन में उनकी

सेवा का उपकरण नवीन रूप में कितने जन्म लिया करता।

ब्रजनन्दन इधर जब से आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था तब से और भी उसमें दत्तचित्त होकर अपनी आहुति देने को जैसे प्रस्तुत थे। वे देश के काम में लगे थे।

मालती अब और भी दूर पड़ गई थी। विधाता उसे वहीं ले जा रहा है। नवीन के चले जाने पर मालती अद्भुत उन्माद से नाच उठी।

मालती के पिता आज कल डिक्टेटर थे। ये दोनों भी उन्हीं के साथ रह कर काम करने लगे थे। परसों जब वे जेल चले गये तब मालती विषाद से पीली हो गई। उसके बीमार पिता! दिन भर उसे चैन नहीं। मन पारे की तरह स्थिर न रह सका।

दोपहर का तीन बजा होगा वह अपने बर्तन साफ कर रही थी। मन जेल की चहारदीवारी के भीतर अवरुद्ध अपने रुग्ण पिता की कल्पना में डूबा जा रहा था।

उधर सामने की दीवार के पास एक युवक खड़ा दीवार के ऊपर उगी घासों को नोंच-नोंच कर बिखेर रहा था। उसीको मालती के पिता ने जेल जाते समय अपने पश्चात डक्टेटर नियुक्त किया था। उसे देख कर मालती असमंजस में पड़ रही थी। वह उसके विद्यालय का वही पुराना छात्र विश्वामित्र था।

धूप बढ़ कर उसके मस्तक पर आ गई थी। वहाँ से हट कर वह चला जाना चाहता था; पर, न जाने क्यों वह रुका और कुछ सोच कर मालती के पास आ खड़ा हुआ।

मालती उसे देखने को मुड़ी ही थी कि उसने पूछा—मुझे पहचानती हो?

क्यों ?—उसने प्रश्न किया।

वह बर्तन समेट कर चली जाना चाहती थी।

मैं तुम्हारा अपराधी हूँ।

होगे।—कह कर वह घूम पड़ी।

उसका दण्ड ?—युवक ने पूछा।

अपराध किससे नहीं होता पर उन्हें भुला देना क्या अच्छा नहीं ?—मालती ने घूम कर कहा।

दोनों की आँखें क्षण भर को मिलीं किन्तु दूसरे ही क्षण मालती अपने कमरे में थी।

न जाने कब की स्मृति आँसुओं में भींग चली। मालती ने बड़े धैर्य से आँखों को साफ कर नवीन की ओर देखा। वह अभी तक बिस्तरे पर दोपहर की नींद में खर्राटे ले रहा था। मालती ने अपने आँचल में अँगुलियाँ लपेट कर उसके चरण छुये और उसी की छाया में जैसे लुढ़क गई। उसके रोंगटे खड़े हो रहे थे। आँखों के सामने से एक छाया हट रही थी। अपराधी चला जा रहा था किन्तु मालती अपने को जैसे पकड़ा देने को तुली थी।

———

आह...देवो ! तुम लोगों का हृदय सहज ही करुणार्द्र एवं कोमल-पूजारत रहता है। अपनी यात्रा में अपार कष्ट पाकर भी जो तुम यहाँ आशीर्वाद देने आई हो, वह मेरे मार्ग का सम्बल होगा—कलाकार ने घूम कर उत्तर दिया। उसको विश्वविजयिनो प्रतिभा आँखों में झलक रही थी।

तुम्हारी पवित्र वाणी तो हम लोगों के भविष्य को पथ दिखलाती है !—युवती ने अपने हृदय की सारी करुणा बिखेर कर कहा। दोनों क्षण-भर चुपचाप खड़े रहे। युवती ने उल्लसित होकर फिर स्तब्धता भंग की—महोदय ! सायंकाल के धूमिल पट में इस नगर का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठता है, ऐसो सहृदयों की सम्मति है। प्राय: आगन्तुक इस समय टहलने निकल कर उसका निरीक्षण करते हैं। यदि कष्ट न हो...।—युवती प्रत्याशित भाव से उसे देखने लगी।

हाँ—हाँ, सादर मैं इस निमन्त्रण को स्वीकार करता हूँ देवी !
वह टहलने चला। रमणी उसके कितने ही प्रश्नों का उत्तर देती बढ़ रहो थी।

अहा...!—दूर जाने पर युवती ने एक ओर संकेत करके कहा—इसका स्वर कितना करुण है। हाँ..यह तो तुम्हारी ही कविता है—विदग्ध-हृदय में पीयूष वर्षण करने वाली।—उसके उज्वल दाँतों की पंक्ति अधर पर आ लगीं।

कलाकार ने उधर देखा—पटरी पर पिंजड़ेदार गाड़ी में एक पंगु अवशेष दृष्टि से पथिकों से याचना कर रहा है और अपने सन्तोष के लिये—दुख और सुख ये दो मानवी प्रवृत्तियाँ हैं,

हम उन्हें रूप देकर उनके आवरण में भूल जाते हैं, भ्रम में अपने को खो देते हैं—का छन्दबद्ध पाठ कर रहा है। तब तक युवती ने बढ़ कर उसकी अञ्जलि स्वर्ण-मुद्राओं से भर दी।

पंगु ने साश्चर्य देखा, हाथों ने गुरुता का अनुभव किया, आँखों ने मोती न्योछावर कर दिये। फिर भी वह अब तक मौन था।

तुम्हारे हृदय को अमृत से सींचने वाले कवि यही हैं, इन्हें देखो!—युवती ने पंगु से कहा।

पंगु उधर टकटकी बाँधकर देखने लगा। फिर बोला—कवि, मेरे हृदय के आश्वासन! देश के आत्मा की ध्वनि! तुम्हीं हो—मुझ सुदामा के साक्षात कृष्ण हो!—स्वर्ण-मुद्रायें लुटाकर पंगु ने दोनों हाथ रमणी को धन्यवाद देने के लिए बढ़ा दिये।

मुद्राओं के आकर्षक झंकार में उलझे दल के दल लोग एकत्र हो गये। कलाकार स्तब्ध खड़ा था! पंगु ने आये हुये लोगों से कहा—देखो ये हमारे कवि हैं, माता के आल्हाद हैं...—आवेग में आगे वह कुछ न कह सका।

आई हुई जनता, उसको जान कर, व्यवहार में विनम्र, स्तव तथा गान में उच्चनाद का प्रदर्शन करने लगी। बालकों ने भी कितने ही नारे लगाकर स्वागत किया। दो-चार ने करुणामयी हेमलता—युवती का नाम—की जय की आवाज भी लगाई।

कलाकार ने किञ्चित मुस्करा कर युवती की ओर देखा—वह आनन्द-विह्वल खड़ी थी। कलाकार घूम-फिर कर शीघ्र ही लौट आया। उसके साथ अत्याधिक जनता वहाँ तक आई।

कलाकार

कलाकार अपने समय का सबसे बड़ा कवि, लेखक एवं कुशल नाट्यकार था। उसके एक-एक शब्द पाठकों के हृदय पकड़ते थे। समाज का नग्न-चित्र, संस्कार की रूढ़ियों से दलित भावनाओं का फल तथा प्रवृत्तियों का प्रतिघात उसकी लेखनी को सहज लभ्य था। उसकी उदार एवं कोमल कल्पनायें मनुष्य-हृदय की विस्मृत गलियों को भी सींच आती थीं। उसका स्पर्श सजीव एवं साकार कर देता था। उसके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में हम अपने को पा जाते थे। वह आज का नहीं, अनन्त का, चिरन्तन का, प्रतिनिधि था—दर्शक था।

उसकी पूजा का सच्चा अवसर देश को आज मिला, जब उसके संकेत से उसकी चेतना ने उसे जान लिया था, उसकी गुरुता का अनुभव कर लिया था। मस्तक स्वयं उसके अभिमान के लिये उन्नत एवं अभिवादन के लिए नत हो जाता था। सभी का हृदय-सिंहासन उसके लिये प्रस्तुत था।

सम्पूर्ण नगर दीपमालिका से आच्छादित किया गया। जगह-जगह तोरण-द्वार मानों आकाश चूमने को अड़े थे। वाता-यनों से स्त्रियों का समूह पथ पर जाने वालों पर खील-बताशे और फूल बरसा रहा था। जनस्रोत वर्षा की उन्मादिनी नदी की भाँति अग्रसर था। बाजों की ध्वनि, बालकों का कण्ठ-रव और उत्फुल्ल पथिकों का विनोदपूर्ण वार्तालाप आपस में टक्कर ले रहे थे। आनन्द पागल हो कर आज मानों नगर में फेरी दे रहा हो।

कलाकार की सवारी बड़ी धूम-धाम से निकाली गई। जगह-जगह उसे रुक कर लोगों की पूजा ग्रहण करनी पड़ी। विद्वत्परिषद् ने अपनी सर्वश्रेष्ठ उपाधि सादर अर्पित की; अन्य कई प्रतिष्ठित समितियों ने भी उसका यथोचित सम्मान किया।

कलाकार, विदुषी हेमलता का सहयोग सभी जगह व्यापक रूप में देख कर उसके अथक परिश्रम से चकित था। वह अपनी हार्दिक नम्रता से सब को परितोष देकर हेमलता के साथ नाट्य-गृह में उपस्थित हुआ। यहाँ उसके स्वागत का अपूर्व आयोजन था। नाट्यगृह वालों ने उसी का लिखा 'देव-प्रणय' नामक नाटक दिखलाना निश्चित किया था। कलाकार के लिए यह नवीन दृश्य था।

यश और सम्मान की आँधी ने आज कलाकार को झकझोर डाला। अपने विश्वास का अतिक्रमण कर आज वह जहाँ पहुँचा था, वहाँ तक उसकी कल्पना कदाचित् नहीं पहुँची थी। वह आश्चर्य से आँखें फाड़ कर वहाँ उसकी माप करने लगा।

नाट्यगृहपति ने कलाकार का स्वागत करते हुये कहा—मैं आज आप का सुप्रसिद्ध नाटक ' देव-प्रणय ' खेलना चाहता हूँ। आशा है यह आप के लिये अधिक मधुर होगा।—फिर जनता को लक्ष्य कर उसने सूचित किया—इस नाटक को सफल करने के लिये आज बहुत दिनों के बाद रंगमंच पर अभिनेतृ-श्रेष्ठ मल्लिका-देवी उपस्थित होंगी।—जनता करतलध्वनि से नाट्यगृह को विकम्पित करने लगी।

मल्लिका...वेश्या...छिः—चौंक कर घृणा से कलाकार ने कहा। फिर सम्हल कर उसने देखा कि लोग आनन्द में मग्न हैं। वह एक गहरी साँस निकाल कर चुपचाप बैठा रहा।

नाटक प्रारम्भ हुआ। लोगों ने कलाकार की जय की घोषणा की। इन्द्र और अहिल्या का प्रेम एवं उसका परिणाम नाटक का विषय था। दृश्य चलने लगा। सुन्दरी मल्लिका अहिल्या के रूप

में कमाल कर रही थी। वाणी के अनुरूप भावों का प्रदर्शन, सूक्ष्म मनोभावों की सफल व्यंजना, उसकी सजीव कला के रूप थे। जनता इस अभूतपूर्व उपभोग में उन्मत्त हो रही थी। अब जोरों से मल्लिका का जय-जयकार होने लगा। कलाकार अब दूर पड़ गया था। लोग इस आनन्द में उसे भूल गये।

गौरव के महोच्च-शिखर पर कलाकार उपस्थित था। वहीं उसके पैर काँपने लगे। वह अपने भीतर देख रहा था—गाँव में अपना बाल्य-काल, स्वजनों से घिरा हुआ; उसके बीच एक छोटी प्रतिमा—जैसे देव प्र...—घृणा ने उसी समय दृढ़ स्वर से कहा—ना...। कलाकार सिहर उठा, आँखें खुल पड़ीं। फिर दृढ़ मनःशक्ति से उसने नाटक की ओर देखा—अहिल्या—सुन्दरी संकुचित अहिल्या—अपने हृदय की अतीव अतृप्ति-जन्य व्याकुलता से रोम-कंटकों में धँसी हुई अपनी वासना का प्रेम सूखी आँखों से ढ़ाल रही है। इन्द्र उसे आलिंगन करने जा रहा था, वह अनजाने भय से दो कदम पीछे हट गई।

उसी समय बावली जनता ने उन्मत्त हो कर कहा—अभिनेत्री मल्लिका की जय!

कलाकार लड़खड़ा कर पृथ्वी पर आ गया।

आह... कैसी विडम्बना!—आँख खोलते हुये कलाकार ने कहा।

नाट्यगृह में मूर्च्छा दूर हो जाने पर वह सभी लोगों से बिदा

लेकर एकान्त की इच्छा से अपने मकान के दालान में आकर लेटा था। उसके भीतर जो घोर विप्लव हो रहा था, जो आँधी चल रही थी, उसमें कलाकार तृण की नाईं अपने अस्तित्व की रक्षा में असमर्थ था। उसका अधीर—आकुल मन जैसे हृदय के एक-एक स्पन्दन में फटा पड़ता था। तभी तो उसके मुँह से अनायास निकल पड़ा—आह, कैसी विडम्बना!—उसके जीवन की सम्पूर्ण गम्भीरता इन दो ही शब्दों में उड़ गई थी।

स्वामी! थोड़ा-सा गर्म दूध पीना हितकर होगा, आज्ञा हो।—त्रस्त अनुचर ने अनुनय से पूछा।

कुछ नहीं, अब तुम जाओ, मुझे यहीं पड़े रहने दो।

अनुचर चला गया। कलाकार स्तब्ध नेत्रों से देखता रहा। लम्बी साँस लेकर कलाकार ने फिर आँखें मूँद लीं। होठ हिलने लगे, स्वर स्पष्ट होने लगा।

तिल-तिल लेकर जिसे अपने भीतर से काँटे की भाँति निकाल फेंका था, और जिसके प्रतिकार में पहाड़-सी घृणा एकत्र करके सन्तोषपूर्वक मैंने एक बार सिर उठाया—हाय, वही इतना विराट बनकर जीवन की सम्पूर्ण तपस्या को अपने एक ही क्षुद्र श्वास बयार में उड़ा ले गया। मेरे हृदय! सच कह दे—क्या तू ने भी मेरे संग छल किया था? मेरी प्रत्येक वाणी की प्रति-ध्वनि में घृणा—घृणा का उच्चनाद! फिर आज क्यों? मैं गलकर पानी की बूँद बन एक-एक कतरे में आज वहीं डूब जाना चाहता हूँ···ना—यह सब कुछ भी नहीं, हाँ एक दिन मैंने बड़े प्यार से, दुलार से, देवता के समीप अपने को उत्सर्ग करना चाहा था।··· मिथ्या···मैं कुछ भी नहीं···कौन कहता है देवता···वह राक्षस···

पतित ''हाँ''छल...वञ्चना—मैं आज भी घृणा करूँगा''बस, कुछ नहीं, घृणा करूँगा ''घृणा।

उसकी पलकें निद्रा से भर उठी थीं। वह सो गया। सोते-सोते स्वप्न देखने लगा—

निर्मल दीपालोक से प्रकाशित प्रकोष्ठ, निभृत राका की मनोरम शान्ति से गम्भीर होकर स्वच्छ एवं सुन्दर था। कलाकार आत्म विस्मृत होकर कविता लिखने बैठा। सहसा वर्ण-समूह जैसे ऊपर की ओर उठने लगे। पश्चात् क्रमशः परिवर्तन में वह देवरूप-सा आकार हो गया। कलाकार ने नत मस्तक होकर उसकी बन्दना की। जब मनोरम पाणि-पल्लवों के स्पर्श से आकृष्ट होकर फिर उसने मूर्ति की ओर दृग्पात किया, तो वह मल्लिका थी। वह चौंक कर दो कदम पीछे हट गया। उस समय उसके अन्तस्तल में कितने रस इकट्ठे हुये, इसे वह भी न जान सका। वह फिर भी देखता रह गया। अपनी जवानी और प्रौढ़ावस्था में जिस रूप को वह नहीं भूल सका था, एक-एक विश्राम में नयन-पट पर छा जाने वाली वही किशोरावस्था की देखी मल्लिका को कलाकार ने पुनः अपने अनन्त संशय भरे नेत्रों से देखा! वह क्षण-भर के लिए सब कुछ भूल गया। जब चेत हुआ तब कलाकार ने आश्चर्य से पूछा—मल्लिका! तुम हो? ''आश्चर्य।

हाँ, हमी तो हैं, आश्चर्य क्यों?—दृढ़ स्वर में मल्लिका ने कहा।

तुम्हें उस जीवन से घृणा हो गई है इसी से''क्यों''

मल्लिका··पर अब···आह !—निःश्वास लेकर कलाकार ने कहा।

मल्लिका जैसे वज्रघात सहन कर भी अविचल खड़ी रही। ऐसे धैर्य से कुछ क्षण मौन रहने के बाद उसने कहा—तुम्हारा व्यंग्य मुझे कहीं से भी मर्माहत न कर सका, तुम भले ही इसे देखकर दुखी होगे। पर इससे क्या! तुम अहंकार वश जो न जान सके, जिसे न पहचान सके, उस पर ही तो तुम आक्रमण करना चाहते थे···!—कहकर फिर वह बड़ी व्यथा से बोली—नारी हृदय कितने धैर्य से अपनी रक्षा करती है, इसे तुम नहीं जानते !—कौमार्य की उज्ज्वल आभा से मल्लिका की मूर्ति जैसे चमक उठी।

अरे···तो तुम्हारा वह घर से पलायन और वह "वेश्यावृत्ति क्या सब मिथ्या है ?···नहीं !··· कलाकर ने आँखें फाड़कर प्रसन्नता से पूछा।

मल्लिका से अब न रहा गया; आँखों से झर-झर आँसू की बूँदें गिरने लगीं। वह बैठ गई। फिर कहा—तुम इसे जानकर क्या करोगे ? हाँ··मैं घर में भी रहकर तो तुम्हें किसी तरह नहीं पा सकती थी, क्या तुम इसे भी नहीं जानते ?

कलाकार बीच ही में बोल उठा—हाँ। यह सब सच हो सकता है, क्यों··पर···।

मल्लिका ने बिजली की तरह कौंध कर कहा—पर··पर क्या···हाय, मुझे दुःख है, मैं अपनी माता को सुखी न कर सकी। वह भी तो मुझे बेचना ही चाहती थी। मेरे रूप के कारण उसे जो कुछ अधिक मूल्य मिलता उससे उसकी वृद्धावस्था मजे में

कट जाती।···पर··ओह, मेरे पलायन से, सुनती हूँ, वह तड़प-तड़प कर मरी··निष्ठुर!···पर जिस कामना से अपनी दुर्बलता के ढोंग में मैंने एक पवित्रता ढोई है, उसकी आकांक्षा अब मुझे नहीं··माँ बेचारी तड़प-तड़प कर मरी··मैं भी उसके प्रायश्चित में हृदय में जलन लिये मरूँ, यही कामना है।—कहकर उसने तीक्ष्ण छूरी छाती में चुभा ली।

हैं—हैं, यह क्या?—कहता कलाकार दौड़ पड़ा। पर वहाँ कुछ भी नहीं था। अब उसके प्रभात का स्वप्न नष्ट हो चुका था। वह शून्य आँखों से उसे अनन्त में खोजने लगा। उस समय आकाश में लाल-लाल बालरवि जैसे मल्लिका के रक्त में सद्यः स्नान किये आये थे, और धरणी का अञ्चल नन्हे-नन्हे ओस-कणों से भीगा पड़ा था। कलाकार की आँखों से भी दो बूँद आँसू उसपर चू पड़ीं। कलाकार कटे वृक्ष की भाँति लड़खड़ाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

सहसा हेमलता भीतर आई। कलाकार को गिरते देख, उसने अपनी कोमल बाहुलता से उसे उठाया। उस सुख-स्पर्श से कलाकार की आँखें खुलने लगीं। उसने भय से पूछा—कौन, मल्लिका?

हेमलता ने आँखें नीची किये हुये कहा—यह तो मैं हूँ हेमलता, मल्लिका तो रात ही अभिनय के बाद···हृदय की गति बन्द हो जाने से··मर गई।—उसके हाथ में कलाकार की बाँहु ढीली पड़ गई थी।

हेमलता ने सचेत होकर देखा, कलाकार की आँख मुँदते-मुँदते रह गई। शरीर चेतना-शून्य है। तबतक नगर नींद की खुमारी में विकल था।

हेर फेर

समाचार पत्र में कभी किसी स्त्री पर किये गये अत्याचार की कथा पढ़कर मन में जो उद्वेग और बदला लेने की प्रवृत्ति जागृत होती है, उसमें हमारे सामाजिक गौरव का एक क्षीण अभिमान दृष्टिगोचर होता है। आज सभ्यता ने जब हमारे सम्पूर्ण धार्मिक बन्धनों को शिथिल कर डाला है। तब भी उसने नारी सम्मान की एक कल्पनासिद्ध ऐसी मर्यादा हममें उत्पन्न कर दी है, कि ऐसे अपवादों के लिये मन में घोर विप्लव आरम्भ हो हो जाता है। हमारा पुरुषत्व वहाँ क्षमा कर ही नहीं पाता। ऐसी ही उत्तेजना वश कभी हमारा अन्धापन उस निर्मल स्रोत को भी कलुषित कर बैठता है, जिससे कितनों का भविष्य

उज्वल और सुखमय हो सकता है। नीचे की घटना एक ऐसे ही समाचार से सम्बन्ध रखतो है।

जुलाई महीने की वह कोई तारीख थी। आकाश में बादल और उनके बीच खेलती हुई बिजलियाँ मेरे यात्रा प्रसंग को दूभर कर रही थीं। बूँदें अभी एक-एक कर हो पड़ी थीं, किन्तु, उनकी बाढ़ को सम्भावना से, मन एक असम्भावित क्षोभ से दबा जा रहा था। उस पर, आँधी की सी हवा, सम्पूर्ण प्रान्त-विभाग के धूल और कंकड़ियों के कण बटोर कर आक्रमण कर रही थी। मैं अपनी टमटम में बैठा सीधी सड़क चला जा रहा था। बड़ी आफत जान पड़ रही थी। अभी मुझे सोलह मील जाना था। सहसा बरफ के टुकड़े और बड़ी-बड़ो बूँदों की झड़ आ गई। हवा के झोंके उन्हें उड़ा रहे थे। हवा की लहरों पर उस झड़ी का उड़ना विलक्षण था। मेरी यात्रा में उसने पूरा विरोध खड़ा कर दिया। मैं एक घने वृक्ष की छाया में अपनी टमटम रोक कर पानी रुकने की प्रतीक्षा करने लगा।

उस छाया में दो बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। उनके बैल जुते थे। वे आँखें बन्द किये अपने उस विश्राम की दशा में पागुर कर रहे थे। उन्हें उस बुरे दिन की परवाह न थी। वे सुख से खड़े थे। लड़कपन ही से मुझे कुछ ऐसे प्राकृतिक करुण दृश्य देखने में अधिक आनन्द आता था। मैं उस आनन्द की अभिव्यक्ति आज भी भाषा द्वारा नहीं कर पाता; किन्तु देखने पर उसका जो रस हृदय में उमड़ता है, उससे मुझे जैसे ईश्वरीय अनुभूति प्राप्त होती है। मैं बड़े ध्यान से उस सौन्दर्य चित्र को देख रहा था। यकायक बड़े जोरों की घड़घड़ाहट हुई। उस आवाज ही से बिजली की तीक्ष्णता का अनुमान किया जा सकता था। क्योंकि यह

आवाज उसी के गिरने से हुई थी। उस आवाज से मेरा घोड़ा चमक गया। मैं उसे सँभालने की चेष्टा करने लगा।

उसी समय मेरी टमटम के करीब एक आदमी आकर खड़ा होगया। वह गिड़गिड़ाने के स्वर में कुछ प्रार्थना भी कर रहा था।

उसकी प्रार्थना बिना सुने ही मैंने कहा—गाड़ी से दूर हट कर खड़े हो। मेरा घोड़ा भड़क रहा है।

वह काले कम्बल की घोघी में अपने को पानी से बचाने के लिये छिपाये था। उसे अपने समीप देख कर फिर मेरा घोड़ा भड़क उठता; इसीलिये मैंने उससे हटने के लिये कुछ डाँट कर कहा। अब पानीकी बूँदें कुछ कम पड़ चली थीं। मैं भी अब बढ़ना चाहता था। उसके दूर खड़े होने पर मैंने पूछा—तुम क्या चाहते हो? पर, उसने कुछ समझने लायक उत्तर नहीं दिया। अपने दोनों हाथ मिला कर वह जमीन चूम रहा था। यह मेरे पैर छूकर अपनी प्रार्थना प्रगट करने की बात थी। किन्तु, इस क्रिया में उसके चेहरे पर का आवरण हट गया था। उस अन्धकार में वह तीस वर्ष से अधिक का न जान पड़ा।

उसके पैर छूने की क्षुद्रता से मैं जल उठा। मुझे ऐसी विनम्रता से सदैव विद्वेष रहा है। इससे तो खुद आदमी अपना अपमान करना सीखता है। कभी-कभी तो ऐसी चेष्टाओं से मेरा क्रोध भी भड़क उठा है। आज भी क्षोभ की एक चिनगारी मन के किसी कोने में चिटक उठी थी। किन्तु उस युवक के आँसू की तरलता ने मुझे आर्द्र कर दिया था। इसी से उसका प्रभाव दबा रह सका। मैंने गला साफ करके फिर भी चिढ़ कर ही

कहा—साफ साफ बतलाओ तुम्हें क्या चाहिये ?—और घोड़े की रास हाथ में लेकर मैंने अपने जाने को शीघ्रता भी उसे सूचित कर दी।

वह बहुत घबराया हुआ था। उसने बड़ी अनुनय से कहा—बाबू मैं एक सेशन सुपुर्द मुलजिम हूँ। बड़ी मुश्किल से जमानत पर छूट कर अपने मुकदमें की पैरवी कर रहा हूँ। एक कागज भूल गया है, उसे लेने घर जाना होगा। ओह...कल सुबह ही मुझे जज के सामने फिर हाजिर होना है। दया कीजिये।—कह कर वह फिर एक बार गिड़गिड़ा उठा और मेरी ओर देखने लगा।

वह क्या चाहता है,—अपनी आतुरता में इसे वह स्पष्ट न कर सका था। उसको इस मूर्खता को छिपा कर मैंने पूछा—तो तुम क्या चाहते हो ? यदि ठीक से तुम मुझे बतला सको तो मैं देखूँगा, कि मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ।

बाबू जी—वह बतलाने के लिये और नजदीक आकर बोला—मुझे नहर के बाँध तक जाना है। आज ही सुबह वहाँ से मुझे पैदल कचहरी जाना पड़ा था, और अब लौट रहा हूँ। फिर शीघ्र कागज लेकर लौटना है। विपत्ति है...और क्या कहूँ ? आकाश की हाल ऐसी है। आप अपनी टमटम पर ले लेते...।—वह चुप हो गया किन्तु उसकी करुण दृष्टि मुझसे उत्तर माँग रही थी।

मैं सोचने लगा। अन्धकार भी गहन हो रहा था। मुझे जल्दी से जल्दी पड़ी हुई थी। फिर आगे वन प्रान्त था। ऐसे तो प्रायः इधर-पर अधिक दिन हुए—डाके पड़ते सुने गये थे। फिर

मुझ ऐसे अधिकारी आदमियों पर सुअवसर पा कर मुझसे दण्ड पाये हुए कितने बदले की ताक में न रहते होंगे? इस धारणा की भी एक चेतना मन में नाच गई। पर, मैंने शीघ्र ही उससे स्वाभाविक रूप से कह दिया—अच्छा, बैठ लो।

मेरी टमटम में दो ही सीट थी। उसमें कोचवान के बैठने के लिये भी पीछे जगह नहीं थी। वह मेरी ही बगल में आकर बैठ गया। मेरी सुविधा का उसके बैठने में अधिक ख्याल था! पर, परिस्थिति, अन्धकार, रात्रि और शीघ्र टमटम हाँकने की चेष्टा के कारण मैं उससे कुछ कह न सका।

थोड़ी दूर बढ़ने पर तन में हवा लगी। कुछ सिहरन भी जान पड़ी। घोड़ा भी अपनी गति में था। मेरे सोचने की अब कोई बात रह न गई थी। इस निःशब्द रात्रि में साथी का अभाव अब न रह जाने से मैंने उसकी ओर ध्यान दिया।

मैंने कहा—भले मानुष? बैठे हो, तो मजे ही में बैठो! अब तो तुम पहुँच ही जाओगे।—कह कर उसे सुविधा देने के लिए मैं और व्यवस्थित होगया।

वह भी थोड़ी सी स्फूर्ति दिखला कर मुझसे कहने लगा—मैं अच्छी तरह हूँ। आप कष्ट न करें।

इस थोड़े से उत्तर ही से वह मुझे सन्तुष्ट कर चुप हो जाना चाहता था। मैंने पूछा—तुम कैसे मामले में फँसे हो! क्या करते हो?—कुछ सहानुभूति भी मेरे स्वरों में थी।

वह स्तब्ध था, घबराया, परीशान भी था। उसने कहा—बाबू जी मैं नहर के तार विभाग में काम करता हूँ। पहिले सदर में था, अब तो बदल कर यहीं तलहटी के छोटे आफिस में

आ गया हूँ। सब दुश्मनों और ग्रहों का फेर है बाबू...।—कहते-कहते उसकी दृष्टि में उसका भयानक वर्तमान हँसने लगा। वह उसी से अभिभूत होकर फिर जैसे चुप हो जाना चाहता था। पर उसने शीघ्र ही अपनी भूल पकड़ ली। कहने लगा—यहाँ पहुँचते ही तो मुझ पर ऐसी विपत्ति आई जिसे कहते भी लज्जा मालूम पड़ती है। उसने आज मुझे संसार में बिलकुल अकेला कर दिया है। कोई अपना नजर नहीं आता। मैं देखता हूँ कि इस संसार में जैसे मैं एक दम नया आदमी आगया हूँ। मेरी नवीनता मुझे ही भयानक जान पड़ती है!—कहते-कहते उसका गला भर आया।

मैं उस सीधे साधे साधारण आदमी की बातें सुन रहा था। यह कैसी बातें करता है? मस्तिष्क उलझन न मान कर भा परीशान था। मैंने कहा—दुनियाँ लोगों को सचमुच कठिनाइयों में छोड़ देती है। वह धक्के देती है। हँसती है। सुलह करना उसकी प्रकृति ही नहीं। तुम कैसे फँसे? अपनी शक्ति और सद्विचार को साथी बनाओ।—कह कर सान्त्वना के लिए मैं उस अँधेरी रात में उसकी ओर देखने लगा।

उसने कहा—सच है किन्तु निरपराध मार खाना बड़ा कष्ट-दायक होता है। सद्विचार पाप बनने लगते हैं।—मैं एक बार चौंका; फिर भी उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा—आज छ साल की बात है बाबू! मैं आगरे से बदल कर यहाँ आया था। नई जगह थी। अपना कोई साथी भी नहीं। मैं आफिस के पास ही एक छोटा-सा मकान लेकर रहा। दिन भर काम करने के बाद तबीयत इतनी भारी रहती कि मुझे कहीं आना-जाना भला भी न लगता, और, न इतने इफरात पैसे ही हम सब के पास रहते हैं कि

मनोरंजन के लिए रोज बाजार की हवा हो खाया करें। फिर अपने भोजन-पानी की तैयारी भी दोनों समय मुझे ही करनी पड़ती। मुझे इसका दुःख भी नहीं था, मेरा मकान चौमुहानी के पास था। लोगों की आमदरफ्त रहने से तीन चार दुकाने वहाँ थीं। पर, और कोई मकान न थे। कुछ दूर पर गरीबों के दो-चार घर बसे थे। उसमें की एक बुढ़िया मेरा काम करने आया करती। वह गरीब नब्बे वर्ष की उम्र से कम न थी। उसमें काम निभा ले जाने की शक्ति तो थी नहीं; किन्तु पेट के लिये बड़े धैर्य से वह अपनी कमी मालूम न होने देती। उससे काम लेते मुझे भी दया आती; किन्तु उसका प्रेम! अपने बच्चे की तरह मानती। मेरी सारी गृहस्थी उसके हाँथ थी।

उस निरीह बुढ़िया की एक मात्र अवलम्ब तारा—उसकी नतिनी थी। उसी को देख कर वह जीती थी। तारा उस समय ग्यारह वर्ष की, काली—नहीं, साँवली-सी, चञ्चल, बातूनी और नटखट लड़की अपने मोह के बन्धन से उसके प्राण जकड़े थी। यह सभी जानते कि तारा को प्रेम करना उस बुढ़िया के समीप अत्यधिक प्रीति प्राप्त करना था। सब उसे चाहते। झुन ‥ झुन ‥ झुन उस के पैर की छोटी झाँझ कभी न चैन पाती। होठों पर हँसी और अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से जैसे लोगों की बातों का उत्तर देते वह दिन भर घूमा करती। वह स्थिर बैठती ही नहीं थी।

बुढ़िया के कामों में मदद देने वह मेरे यहाँ आती थी। पर काम ही अधिक बढ़ा दिया करती। मेरी भी चीजें एक जगह न रह पातीं। हम सब के परीशान करने में उसे न जाने क्या आनन्द मिलता। मैंने कितनी बार समझाया, डांटा, पर, उसे वह

बड़ी सरलता से समझकर, फिर कभी वैसा न करने के लिये अपना सिर हिलाकर, हामी भर कर, वही—वैसाही किया करती। आज भी उसकी वही आदत...।

अभी भी वह तुम्हारे ही पास है? मैंने बीच ही में रोक कर कुछ संदेह वश पूछा।

हाँ—उसने कुछ समझ कर साहस से कहा।

मैं दृढ़ता के साथ कुछ निर्णय न कर सका था कि उसने कहा—

वह जाती ही कहाँ? उसकी नानी चार साल हुए मर गई। जमींदार ने उसका घर बेदखल करा लिया। उसकी जाति वाले पहले ही उस बुढ़िया को जातिच्युत कर चुके थे। अब वे एक अनाथ का बोझ लेने को तैयार क्यों होते? वह हठी लड़की सब के मान की थी भी तो नहीं! वह दुलार के कारण लड़कपन ही से सरल किन्तु दृढ़ थी।—वह उत्तेजित था।

मैं एक क्षण के लिए भावना से जैसे उस लड़की का चित्र अपनी आँखों के सामने स्पष्ट कर रहा था। इतनी निरीह और ऐसी उद्दंड? इस युवक ने जैसे उसे प्यार करके महान और मन्त्र कीलित कर दिया है। वह लता जैसी इससे लिपट पड़ी है। हृदय इसी का विश्वास पाकर सन्तुष्ट होना चाहता था। मैंने कहा—तभी तो! वह तुम्हारे यहाँ प्रसन्न तो है?

रह सकती है—उसने स्वाभाविक गम्भीरता से कहा—मैं ने कभी उस पर शासन करने की चेष्टा नहीं की। वह मेरे सामने इतनी बड़ी हुई है। उसकी एक-एक प्रकृति मैं जानता हूँ। उसने

स्वयं मुझ से कहा था— तुम मुझे छोड़ कर चले जाओगे, तो मैं विष खा लूँगी। मैं मर जाऊँगी। तुम मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते बाबू!—फिर मैं उसे कैसे छोड़ता? वह झूठ नहीं कहती थी। वह विष न खाती तो भी न बचती। यह मैं जानता था। ओह! यह दुनिया उसे जीने देना नहीं चाहती। मुझे भी जीवित न रहने देगी। वह यही चाहती है।—वह खिन्न हो चला।

मैंने पूछा—तो तुम इसी मामले में फँसे हो। पर, उसे तो कोई है नहीं? किसने मामला चलाया?

वही तो!—उसने एक साँस भर कर कहा—जिसे वह जानती भी नहीं, वही, उसका चचा बन कर उसका उद्धार करना चाहता है। उसने मुझ पर ३६६ का मुकदमा चलाया है। मैं जबर्दस्ती एक निरीह बालिका को लेकर भगा हूँ। कैसा सच्चा अपराध है? यह कुछ नहीं, मेरे भाग्य का व्यंग है। मैं मुअत्तल हो गया हूँ! जुर्म कायम हो गया है। अब तो सभी मेरे खिलाफ नजर आ रहे हैं।

—वह चुप हो गया।

वह लड़की कहाँ है?—मैंने उससे पूछा।

वह मेरे पास है। वह बरामद नहीं हुई। मैं उसे, उनके सिपुर्द नहीं कर सकता।—उसने दृढ़ता से कहा—अब सेशन में वह हाजिर होगी। यहीं के न्याय पर भरोसा रख कर मैं खेल रहा हूँ। ईश्वर यदि है, और वह न्याय चाहता है तो मैं जीत जाऊँगा बाबू!—कह कर, उसने एक बड़ी मार्मिक दृष्टि बादलों भरे

आकाश पर डाली। उसके हृदय की सरलता और इमानदारी उसके विश्वास में बड़ी मनोहर जान पड़ती थी।

मैं करुणा विमुग्ध हो गया। मैं बहुत कुछ दूर तक देखने की चेष्टा न करके वहीं अपने हृदय को विश्राम देना चाहता था। जो आगे आयेगा, यह उसे कहाँ तक पार करेगा, इसकी कल्पना बड़ी अन्धकार पूर्ण जान पड़ती थी। मैं यथासाध्य जैसे उससे बचने की चेष्टा करने लगा।

अन्धकार का काला परदा इस दुनियाँ को ढके था। दृष्टि का व्यापार टमटम की रोशनी से बहुत सीमिति हो गया था। घोड़े की टाप की आवाज प्रतिध्वनि के साथ गूँज रही थी। मन में आज एक कल्पनामयी यात्रा की पूरी उत्प्रेक्षा हो रही थी।

बाबू यहीं रोक दीजिये!—मैं उसी मौज में बहा चला जा रहा था कि उसने कहा।

मैंने टमटम रोक ली।

वह गाड़ी से उतर कर फिर एक बार गिड़गिड़ा उठा। उसने कहा—दस मिनिट मेरे यहाँ ठहर जाइये। जरा चाय पीकर तो आगे बढ़िये। उसके स्वरों में बड़ी प्रार्थना भरी कृतज्ञता थी।

उस चाय के निमंत्रण को मैं अस्वीकार न कर सका। मैंने पूछा—कहाँ चलूँ?

जहाँ मैं खड़ा था, उस जगह नहर का पुल था, अगल-बगल नहरें चली गई थीं। उनके दोनों ओर सुन्दर पक्की सड़कें बनीं थीं। किन्तु अन्धकार में उनका पता न लगता था। उसने एक ओर हाथ दिखा कर कहा—आप उतरिये नहीं, मेरे साथ टमटम

इस नहर की सड़क से ले चलिये। यहाँ से दो सौ कदम की दूरी पर मेरा डेरा है।

मैं चुपचाप उसके पीछे बढ़ चला।

तुम्हारा नाम क्या है?—चलते—चलते मैंने पूछा।

मोहनचन्द्र!—उसने बतलाया।

हम सब एक मोड़ पर पहुँच गये; तब उस—मोहन, ने कहा—बस, यहीं टमटम खड़ी कर लीजिये।—

मैं उतर कर घोड़े को एक पेड़ से बाँध कर उसके दरवाजे पर पहुँच गया।

तारा—तारा—उसने दो आवाजें दी।

ओह! तुम आ गये? खोलूँ??—भीतर से आवाज मिली।

अरे, जल्दी करो—मोहन ने आतुरता से कहा!

दरवाजा शीघ्रता से खोल कर अपने हाथ के दीपक से उस लड़की ने मोहन की आरती उतार ली। उसका हाथ दीपक लिये एक बार चौकोर घूम गया। और जोरों से वह हँस पड़ी। रास्ता उससे अवरुद्ध था।

मोहन काँप उठा था। पर उसने कहा—पगली! मेरे साथ एकबाबू आये हैं। तू क्या करती है?

दरवाजा इसके पहिले ही साफ हो गया था। मैंने जो सतर्कता उस चंचलता के बीच देख पाई थी, वह जैसे एक झलक थी, जो तपे हुये को शीतल कर जाती है। पर, जैसे मैं सन्नाटे में मौन था। मोहन ने मुझे भीतर बुलाया और मुझे अपनी चारपाई पर बिठा दिया।

दीपक के नवीन प्रकाश में सारे मार्ग का अन्धकार जो मेरी आँखों में घर कर चुका था, मैं साफ करने लगा। एक चौकोर टूटी हुई टेबिल पर वहाँ कितने सामान बिखरे पड़े थे। दो चारपाइयाँ बोझ से दबी पड़ी थीं। और भी कितने सामान जैसे अपना अस्तित्व बतलाने के गर्व से उचके पड़ते थे। कोई व्यवस्था नहीं; किन्तु उस उपेक्षामयी प्यार की विशृंखलता में भी जैसे एक सुख था। वे चाय की तैयारी कर रहे थे। मैं विश्राम में झीम रहा था।

इतनी रात को?—सहसा तारा ने जैसे स्थिर होकर पूछा।

मैं कोट की जेब में एक कागज भूल गया था तारा! पर, पैदल नहीं, इन्हीं बाबू की टमटम में आया हूँ। वह उधर बाहर है।—मोहन उत्साह से बता रहा था—मैं अभी जाऊँगा भी...।

तुम आदमी हो?—उसने तीव्र होकर कहा—इस समय न जाओ। फिर जो होना हो—हो?—वह निश्चिन्त थी।

मोहन जोर से हँस पड़ा।

मैं उठ बैठा। मैं मोहन को देखने लगा। उसका वह रूप! सारा दुख और परीशानी उससे दूर थी। मैंने पूछा—अभी चाय तैयार नहीं हुई?

हुई जाती है।—उसने कहा—आप सुन रहे हैं इसकी बातें। —उसने प्रसन्नता से पूछा और कहने लगा—यह ऐसी ही बकती है! इसकी समझ—अक्ल—तो जैसे समय की भेंड़ पहिले ही चर गई। अब भी वही पुराना लड़कपन इसके स्वभाव से लिपटा है। वही जिद! कैसी आदत है?—वह बड़ी प्रसन्नता से उसकी शिकायत कर रहा था।

मैं चुप था।

वह कहने लगा—बाबू, मैंने कभी इसकी बातें नहीं टाली हैं। उस दिन भी यह जिद कर बैठी।—मैं यहाँ रहूँगी ही नहीं। देखूँ तुम कैसे छोड़ कर जाते हो? मैं चुप रह गया था। इसने ही सारा सामान गाड़ी पर रखा था। फिर मुझसे गाड़ी पर बैठने को कहा। मुझे बिठा कर, सारा सामान मजे में सहेज कर, इसने गाड़ी हाँकने का हुक्म दिया और आप मेरे पास आ बैठी। फिर भी इस नाबालिग—खूब हँस कर मोहन ने कहा—लड़की को जबर्दस्ती भगा ले आने का मुझ पर मुकदमा चल रहा है। कैसी विपत्ति है?

मोहन जिस प्रेमरस में विलीन होकर बातें कर रहा था, उसका तार तारा ने तोड़ दिया। वह उसके हँसी के व्यंग से संकुचित होकर कुढ़ गई। वह सहज ही बड़ी तेजस्विता से प्रतिकार कर बैठी।—ओह!...मेरे लिये तुम विपत्ति में हो? मैं नहीं जानती थी। मैं अभी यहाँ से जाती हूँ। रोज रोज बढ़ने वाली तुम्हारी यह विपत्ति मैं यहाँ बैठ कर अब न पालूँगी।—कह कर वह जैसे कोई वस्त्र ढूँढ़ने को मुँड़ पड़ी। उसकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े थे जिन्हें उसे छिपा भी लेना था।

मैं उस क्षण अप्रतिभ हो गया और मोहन विचार विमूढ़। सहसा तारा अपने आँसू पोंछते हुए जैसे रास्ता माँगने लगी। बीच में मोहन था भी।

तारा—मोहन ने उस पर आँखें गड़ा कर कहा—तुम कहाँ जाओगी?—आगे वह कह न सका। कण्ठ फँस गया। आँखें बहने लगीं।

तारा कुछ उत्तर न दे सकी। वह अपनी तेजस्विता में निश्चल थी। वह चुपचाप खड़ी थी।

मोहन उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहा—चलो ! तारा—कहाँ चलोगी। मैं भी अब तुमको छोड़ कर नहीं रह सकता।—उसके भरे गले में जैसे एक प्रार्थना थी। दोनों खड़े थे।

चाय अभी तैयार न थी। मैं भी बैठा न रह सका। कुछ कहना मेरे लिये भार जान पढ़ने लगा। मैंने मोहन की ओर दृष्टि डाली। उसने कहा—बाबू क्षमा कीजिये। मैं आपकी सेवा न कर सका। वह भरी आँखें बड़ी निराशा से मुझे बिदा दे रहीं थीं।

तारा जैसे होश में आ गई। उसने कहा—बाबू, आप बिना चाय पिये कैसे जायँगे।—कह कर वह डेकची की ओर झुक पड़ी।

कुछ क्षण के लिये ही जो अप्रीतिकर वातावरण वहाँ उत्पन्न हो गया था—वह जैसे मेरी चाय बनने की सुलह में विलीन हो गया। मुझे रुकना पड़ा और मैं ठहर भी गया। मैं यकायक जा भी नहीं सकता था। मेरी रुचि उस असह्य प्रसङ्ग में व्याकुल हो उठी थी। किन्तु तारा की जो मूर्ति मैंने देखी, वह बड़ी विमल और तीखी किन्तु प्रेममय जान पड़ी। जब कभी भी अपनी समालोचना में मैंने उसे परखा मुझे वह बड़ी विशुद्ध और हृदय ग्राह्य प्रतीत हुई।

मोहन दयनीय था, उसकी शक्तियाँ कमजोर थीं। वह जैसे बँधा हुवा पक्षी था। प्रेम के मजबूत धागे ने उसके उड़ने वाले सारे परों को खूब कस कर बाँध रखा था। वह सीधा-सादा पुजारी; मेरे हृदय की जाँच रहा था। उसकी सारी आकांक्षायें एक ही मध्य बिन्दु पर केंद्रित थीं।

मैं वहाँ से चल कर सारी राह अपनी टमटम में बैठा यही स्थिर कर सका। बादल छिटक गये थे। उनके बीच-बीच में निकले ताराओं का स्वच्छ प्रकाश जल से धुले कोमल तरु-पल्लवों को स्निग्ध कर रहा था। और, मैं उन्हीं की मीमांसा में तल्लीन था।

मुझे अब स्मरण आ रहा था कि इस घटना को मैंने समाचार पत्र में पढ़ा था। बड़े-बड़े शीर्षकों में इस दुराचार की वीभत्स कथा का मोटो दिया गया था। तारा को जबर्दस्ती सन्दूक में बन्द कर ले भागने की कल्पना उस संवाददाता ने पूरी जानकारी से दी थी! जिसे पढ़कर मनुष्यता से हीन किसी राक्षस ही की कल्पना इस व्यापार में प्रगट हुई। मेरा मन उस दिन इस नरराक्षस की वृत्ति से दूषित हो उठा था। किन्तु आज उन्हें देखकर मन में जो सहानुभूति उत्पन्न हुई इसका मुझे कुछ भी क्षोभ नहीं। मैंने जिस प्रेम का आभास पाया था वह तो जैसे मनुष्य को महान तपस्या, समाज का सौन्दर्य और जीवन के नन्दनकानन की विहार स्थली है। इसमें भले ही हमारे प्राचीन परम्परा की नींव से एकाध ईंट खसक पड़ी हो, किन्तु उसका उपयोग जिस सत्य के निर्माण-संगठन में दीख पड़ा वह स्तुत्य है यह मैं निर्विरोध कहने के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु इन

सारी बातों को उस दिन के बाद मैं स्मरण न रख सका। स्वप्न की बातों की तरह वे अपने आप विलीन हो गई। किन्तु अभी तो उसका वह भाग मेरे देखने के लिए अवशिष्ट ही था जिसमें शैतान का सच्चा हाँथ था।

कोई ग्यारह बजे दिन का समय रहा होगा। मैं किसी दौरे पर से लौट रहा था। उस समय मेरे पास मोटर आ गई थी। मैं उसी पर था। सुफेद धूप निपट शून्य मैदान में उजली होकर चमक रही थी। सहसा मोटर धीमी हुई। ड्राइवर बराबर हार्न दे रहा था। लड़के गाय-बैलों के ढोर सड़क पर छोड़कर दूर पड़े एक तमाशे की तरह कुछ देख रहे थे। भों-भों की आवाज सुन कर गायें धीरे-धीरे सड़क से नीचे उतरने लगीं। ज्यों-ज्यों वे हटती मोटर बढ़ती जाती थी। लड़कों के समीप पहुँचने पर मैंने देखा जैसे एक गठरी की तरह कोई चीज पड़ी हुई है। उसी को वे लड़के घेर कर देख रहे हैं। मैंने अनुमान से समझ लिया कि यह कोई आदमी होगा जिसे धूप ने मार दिया है।

क्या है?—मैंने उन लड़कों से पूछा।

कोई मरा पड़ा है।—उनमें से एक ने कहा—कुछ खून के दाग भी दीख पड़ते हैं।

मैंने मोटर रोक ली। उतर कर उसके समीप पहुँच गया। मैंने जाते ही उन लड़कों से पूछा—यह कब से यहाँ है?

हम सब ने तो अभी देखा है।

मैंने कपड़े हटा दिये। वह एक दुबली-पतली स्त्री थी। उसकी गोद में एक नन्हा बच्चा सोया हुआ था। स्त्री थककर बेहोश पड़ी

थी। कदाचित जब से तीन-चार दिन हुए होंगे—उसे बच्चा पैदा हुआ है—भोजन न मिला हो? कहीं घर न होने से बराबर चल रही हो। कल्पना के कितने रूप सामने आये। किन्तु, सब के अन्त में मुझे यही उचित जान पड़ा कि यदि यह यहाँ पड़ी रही तो निश्चय ही इसे मृत्यु की गोद में जाना पड़ेगा। मैं ड्राइवर और उन लड़कों की सहायता से उसे मोटर के पिछले हिस्से में डलवा कर स्वयं 'ड्राइव' करने बैठ गया। वह एक बार सगबगाई जरूर; किन्तु उसकी वह चेष्टा बड़ी निर्जीव थी। मेरा ड्राइवर बराबर उसकी रखवाली कर रहा था। उसे सदर के बड़े अस्पताल में पहुँचा कर उस दिन मैं घर चला आया।

पाँच-छः दिन बाद क्लब में मुझसे डाक्टर साहब की अचानक मुलाकात हो गई। मैंने बात-चीत के सिलसिले में उनसे पूछा—मि० सेठी, वह गरीब भली-चङ्गी तो हो गई होगी?

डाक्टर भले और उदार आदमी थे। वे कुछ खिन्न से होकर कहने लगे—वह गरीब है। भूख से मर रही थी। उसने अपने हृदय का रक्त और प्राण की सारी महिमा तो अपने बच्चे के रूप में बाहर निकाल ही दिया है, अब यदि उन अवयवों के साँचे में पुष्ट रसों द्वारा फिर उनका निर्माण न हो, तो वह कैसे जीवित रहेगी? वह आज जी कर कल क्या करेगी, यह प्रश्न ऐसों के लिये भयानक है?—वे बड़ी गम्भीरता से कह कर चुप हो रहे।

क्या उसका कहीं घर नहीं?—मैं घबरा गया। मुझे ऐसी निरीहता का जैसे परिज्ञान ही नहीं था। मैं पूछ कर बड़ी उत्सुकता से उनकी ओर देखने लगा।

मेरा प्रश्न सुन कर जैसे वे बहुत कुछ स्मरण करना चाहते थे। इस तरह अपनी पूर्वोक्त बात के सिलसिले में उन्होंने कहना शुरू किया—शायद नहीं है। फिर घर ही क्या करेगा? यहाँ जितने मरीज आते हैं उनमें अधिकतर अपनी गरीबी के कारण पीड़ित होते हैं। यह कल अच्छी होगी, दूसरे दिन अपनी रक्षा के लिये उसे भगवान की राह देखनी होगी। इसे भी कोई है नहीं। यह अभी कुछ कमा कर खा सकेगी इस अत्याचार की कल्पना कठोर है। यों तो वह भली स्त्री जान पड़ती है। और, वह अच्छी भी हो रही है।

डाक्टर सेठी की बातों से मन एक ऐसे चित्र की ओर आकर्षित हुआ था जिसे रुचिकर न होते हुये भी दृष्टि से ओझल कर देना आँखों को धोका देना होता। मैं इसी से गम्भीर पड़ गया था। शीघ्र ही कुछ कह तो न सका किन्तु इस भली स्त्री के प्रति मेरा कोई विश्वास भी ठीक से जम न पाया। इसे कोई नहीं। निरीह अबला—एक बच्चे की माँ का पाप कहाँ से ढो लाई का प्रश्न न सूझ कर भी मन में जैसे सचेत हो रहा था। उस समय तो मैंने निर्विकार चित्त ही से कहा—क्या उस बच्चे का बाप भी नहीं रहा? इतना तो उससे मालूम कर लेते!

दाई ने शायद पूछ लिया है—उन्होंने बतलाया—वह कहती थी—कि बच्चे का बाप कहीं दफ़्तर में नौकर था। पर कुछ दुश्मनों ने उसे फँसा कर जेल भिजवा दिया। वे इसे भी तंग करते थे। वह कहीं दूर का रहने वाला था। यह वहाँ भी नहीं जा सकती। इसे विश्वास नहीं है कि उसके घर वाले ऐसे समय उसे आश्रय दे सकेंगे। मैंने तो अधिक पूछा नहीं—कह कर वे चुप हो रहे।

मेरे मन में जैसे कोई बात उठने लगी। एक पुरानी चीज अपनी स्मृति में जान पड़ने लगी। मैंने बीच ही में पूछा—उससे और भी कुछ मालूम हो सका।

हाँ—उसका नाम—उन्होंने मेरी ओर देखकर कहा—तारा है? क्यों?—सेठी को कुछ सन्देह हुआ कि मैं इसके बारे में जैसे कुछ जानता होऊँ। इसलिये ही झट उन्होंने नाम कह दिया।

मैं उनकी कुतूहलता का कुछ भी निराकरण न करके सोचने लगा।—तारा!—तारा ही तो उसका नाम था। एक रात्रि का संकुचित मोह मेरे मन को छूकर आतुर करने लगा। मैं पारस्परिक कटुता के वातावरण में डूब रहा था; नाक, आँख, कान, मन और जैसे सब से भिन्न मेरा हृदय भी उस समय साँस रुँधने से एक अद्भुत व्याकुलता से भर रहा था। उस समय उस तारा ने कैसी अपनी ममता से मेरे उस संपूर्ण परिताप को एक पल मात्र में धो-बहा कर अलग कर दिया था। उस रात्रि में अपनी सारी लांछना को पीकर जिसने मेरे लिए चाय बना दी थी उसी की कल्पना से मेरा मन रसमय हो रहा था। मैं कुछ क्षण चुप रहा। फिर मैंने कहा—यदि वह मेरे यहाँ रह सके तो मैं रख लूँगा। बच्चों की रखवाली तो कर ही सकेगी! जरा आप पूछ देखियेगा।—मैंने उनसे कह कर चलना चाहा।

उन्होंने उसी समय कहा—बड़ा भला होगा। वह अच्छी तो हो गई है। मैं उसे शीघ्र ही आप के यहाँ भेजूँगा।—कह कर वे चुप ही हो रहे थे, कि हम दोनों अभिवादन कर दूसरी ओर को घूम पड़े।

मैंने तारा विषयक इतिहास उन्हें बताना उचित नहीं समझा

था। मुझे तारा के लिए निश्चय भी तो नहीं था। फिर मैं एक निरीह स्त्री के अपमान की कथा वितरित कर कौन पुण्य पाता ? मैंने सोचा था—तारा के न पाने पर भी इस गरीब स्त्री की सहायता यदि मुझसे कुछ हो जायगी तो भी भला ही है।

किन्तु वह तारा ही थी, उसके दूसरे दिन हास्पिटल की एक दाई के साथ वह मेरे बँगले पर आई। मैंने देखते ही उसे पहचान लिया। तारा को लेकर जो दाई आई थी—उससे डाक्टर ने एक चिट्ठी भी भेजी थी। मैं उसे पढ़ने लगा। चिट्ठी पढ़कर मैंने अपनी पत्नी को बुलाया और उन्हें समझा दिया कि यह एक भली किन्तु दुखी स्त्री है। इसे तुम अपने यहाँ रख लोगी, तो तुम्हारा इसे सहारा मिल जायगा।

वह मेरे यहाँ रहने लगी। पहिले ही दिन जिस निःसंकोच स्वभाव से वह अपने दायित्व का भार सँभाल कर उठ खड़ी हुई; उससे मेरे घर में उसके हृदय की दुर्लभ विजय अङ्कित हो गई। सभी प्रेम से उसके निकट आ गई और वह सब हृदय के समीप थी। उसका यह रूप चिरस्थाई रहा।

मेरे परिवार के बच्चे उसकी संरक्षता में बड़े प्रसन्न रहते। मैं प्रत्येक प्रातःकाल अपने बरामदे में आराम कुर्सी पर लेट कर पढ़ते हुये देखता—छोटे-छोटे बच्चे कभी धूप कभी छाया में अपनी उलझी सुनहली लटें, चमकीली आँखें और अन्तर की किलकारी से उस सम्पूर्ण वातावरण को भिगोते हुये खेला करते और वह उनकी हँसी में अपने को तिराया करती। उसका वह रूप जैसे सारी आकांक्षाओं के परे होता। मन में भले ही कोई दुख रहता हो, किन्तु देखनेवालों को तो उसका आभास भी नहीं मिल सकता था।

उसे मेरे यहाँ रहते चार साल से ऊपर हो चले थे। उसकी वास्तविक कहानी किसी को विदित हो सकी या नहीं; इसका अन्वेषण तो मैं नहीं कर सका। किन्तु उसका वह छोटा सा बच्चा उसकी स्थिति सब की दृष्टियों में मनोहर किये रहा ऐसी धारणा अब भी मैं रखता हूँ। मेरी पत्नी को उसपर विशेष दया थी। वह उनकी सेवा में जिस मनोयोग से रहा करती उससे उसकी निष्ठा भलीभाँति जान पड़ती। मेरे हृदय में उसे लेकर जब कभी विचारों के गम्भीर कहे जा सकने वाले प्रहसन शुरू होते तभी इन सान्त्वनाओं से मैं हृदय को भर उन्हें दबा देता।

किन्तु, पिछले कुछ सालों की गर्मी की बात है। मेरे घर के सभी प्राणी पहाड़ चले गये थे। घर में मेरी पत्नी दो-एक दाई और मेरा एक नौकर ही केवल रह गया था। तारा भी उनमें थी। मेरे चारों ओर बड़ी शांति थी। वृद्धावस्था जितना अपने बाल-बच्चों को प्यार करती है उतना ही उसे एकान्त भी प्रिय है। उन दिनों बड़े सुख की रातें कट रही थीं।

एक दिन सुबह तीन बजे ही नींद खुल गई। अब सोचता हूँ शायद किसी खटके ही से ऐसा हुआ हो, क्योंकि नींद उचटते ही मैं चैतन्य था। यों तो सुबह टहलने के लिये मैं प्रतिदिन चार बजे उठता हूँ। किन्तु इस जल्दी का पता तो मुझे बाद में अनुभव हुआ। मैं उठना ही चाहता था कि मुझे अपने बगल के कमरे से साँय-साँय की आवाज आती जान पड़ी। मैं उसे समझने के लिये ही सिमिटा पड़ा रह गया।

हाँ, तू मुझे पहचान भी गया।—तारा ही तो कह रही थी। वह उन दिनों रात को वहीं रहती भी थी। उसका वह

मन्द स्वर भी कुछ आवेश पूर्ण था। और उसके कँपने से जैसे वह डगमगा कर गिर भी रहा था। पर, मैं स्पष्ट सुन रहा था।

हाँ, तारा और तू अब तक न पहचान सकी ?—

किसी ने जैसे अपना प्रेम दिखलाने के लिये बड़े प्यार से फुस-फुसा कर कहा। मैं जैसे आश्चर्य से सन्नाटा भर चुपचाप पड़ा रह गया। मेरा मन अवसन्न कुतूहल से परिपूर्ण था।

मैं भी पहचानती हूँ। तू चोर है।—तारा ने उत्तर दिया।

नहीं, तारा ! मैं मोहन हूँ। यह तो विपत्ति का साधन है।—उस दूसरे ने कहा।

चोर ! तू अपने को छिपाना भी चाहता है। तुझे शर्म भी नहीं आती ! तू मोहन रहा होगा। पर, अब तू चोर है।—तारा ने साहस से कहा—मैं तुझे जरूर पकड़वाऊँगी।

क्या—नहीं।—दूसरे ने तड़पते हुये फुसफुसा कर कहा—तू इन महलों में न रहता है ! तू जरूर पकड़ा देगी।—वह जैसे जल उठा था। फिर उसने कहा—तू भी चल। अब भी मैं कहता हूँ। और इसे तो मैं ले ही जाऊँगा।

मेरे रहते ही ?—तारा वेग से कह रही थी।—और मैं जीते जी तेरे संग भी चलूँ। चोर को शर्म भी नहीं आती।

अब तुझे ये बातें खूब सूझेंगी।—दूसरे ने उत्तर में कहा—तू यहाँ रानी बनी है न ! मैंने तो जब चोरी नहीं की तुझे मरने को छोड़ नहीं दिया, तब तो तेरे भले मानुष्य गुण्डों ने चोर बना

डाला और अब तो तू कहेगी ही। पर अब तू मौज न कर पायेगी ...डायन!—कह कर उसने छुरा दिखलाया होगा क्योंकि तारा बोल उठी—तू मुझे छुरा दिखलता है। अब हत्यारा भी बनेगा! पर, मैं अपने मालिक का माल उठते न देख सकूँगी।

मुझे तो वहाँ पहुँच जाना चाहिये था। किन्तु मेरा मन रुक कर सब जगह जो एक चित्र देखने लगता है उस कायरता पूर्ण आलस्य की लज्जा तो बाद में जान पड़ती है। मैं ऐसी विपत्ति में भी कल्पना करने लगा। मैंने जो एक रूप देखा था उसमें इस रंग का सामंजस्य चित्रकार की भूल है या कला! वह भी तो मोहन ही था...।

किन्तु उस क्षण मुझे बाधा पड़ी। वह कह रहा था—तारा, मैं अब भी विनय करता हूँ। तू चाहे आज न चल, दो-चार दिनों में मेरे यहाँ चली आना। और तू चाहेगी तो मैं अब ऐसा करूँगा भी नहीं। इतने ही में हम सब किसी तरह जिन्दगी काट लेंगे। तू देखती क्या है? यह ... मैं क्या करता? यह बुरा ही क्या है। तू इसे क्या समझेगी। चल—चलती है?

नीच—तारा ने धीरे से कहा—कदाचित वह कुछ शीघ्रता से हटी-बढ़ी भी; थोडे से ऐसे शब्द भी जान पड़े।

तू मानेगी नहीं— एक स्पष्ट आवाज सुन पड़ी और उसके बाद एक लम्बी चीख!

मैं अपने को रोक न सका। मेरा निर्लज्ज आमोद एक ही झटके में दूर जा पड़ा। मैं दौड़ कर वहीं पहुँच गया। घर के और भी प्राणी बढ़े आ रहे थे।

किन्तु वहाँ स्वच्छ प्रकाश में तारा के कलेजे में बिंधा छुरा रंगीन हो गया था। सब लोग आवाक रह गये। वह नीच अपनी आँखों में आँसू भरे उसके चीखते हुये बच्चे की ओर अब नीची निगाहों से देख रहा था।

और लोग वहाँ घर की बिखरी चीजें बड़ी कुतूहल से देख रहे थे और मैं सोच रहा था विधाता का यह अद्भुत हेर फेर।

जागरण

वह क्या था? अभिशाप था, हँसी थी, वरदान था—या केवल एक कुहुक था? मैं आज भी उसे नहीं समझ सकी। किन्तु, उस दिन जो जगी, तब से सोते-जागते, दिन-रात के प्रत्येक पल में, मैं अपने इस नवीन जागरण का अनुभव कर रही हूँ। किन्तु, यह जागरण कैसा? जिसका सारा विधान मेरे सामने एक रहस्य है! इसी से तो मैं प्रश्न करती हूँ—वह क्या था?

कभी का देखा न सुना, वह एक मूर्ति-संग्रहालय था। रात ही का समय रहा होगा; क्योंकि उस 'हाल' की एकान्त नीरवता में, रात्रि की अपनी अपरिच्छन्न शान्ति और छायालोक, ध्यानस्थ

जान पड़ता था। वहाँ, न मालूम कब और कैसे, और न जाने किसने, मेरी—नहीं—नहीं मुझे ही—प्रस्तर की मूर्ति बनाकर प्रतिष्ठित कर दिया। मेरे इस शरीर के सुख-दुःख की अनुभूति करने वाला मन—उस क्षण-काल में भी—अपना था। इसी से उसकी स्मृति आज भी मेरे इस जीवन के निगूढ़ अन्तर में व्याकुल हो लोट रही है।

मैं प्रस्तर की मूर्ति थी। अपने को जब से मैं वहाँ जान पाई, मैं यही हूँ—इतना ही जान सकी। मेरी उस मूर्ति की निष्कलुषता ही के लिये जैसे विधाता ने मुझे अतीत के बन्धन और भविष्य के मोह से विमुक्त कर दिया था। इसी से उस प्रस्तर खण्ड में भी मैं विह्वल थी।

उस मूर्ति में मेरे रूप का चरम विकास था। मेरी ही सौंदर्य-ज्योत्सना से वह 'हॉल' प्रकाशमय—दृष्टिगोचर—हो रहा था। मेरी स्निग्ध-छवि दीपालोक की तरह निश्चल थी। और, इस नश्वर शरीर का यौवन जैसे उसमें दृढ़ था। अपने सौंदर्य की अनुभूति! ओह .....नशे में मैं फिसली पड़ती थी!

उस 'हॉल' में और भी कितनी ही मूर्तियाँ थीं। एक तो मेरे समीप—बगल ही में—किसी वृद्ध फकीर की मूर्ति थी। उसकी आकृति गम्भीर और शरीर सुगठित था। उस 'हाल' के सम्पूर्ण प्रकाश में उसकी पावन उज्ज्वलता खिल उठी थी। उसकी किंचित् झुकी हुई कमर, तीक्ष्ण दृष्टि और एक प्रशान्त आनन्द—कला की सीमा थी। फिर भी उधर मेरा हृदय खिंच न सका।

मैंने अपनी आँखें मीच लीं। मेरा अपना गर्व जहाँ भीतर हँस रहा था, उसी को मैं देखने लगी। मुझे जान पड़ने लगा—

जैसे किसी की मधुर दृष्टि मेरा अभिषेक कर रही हो। बिना जाने-सुने, न जाने किसकी उपासना का वर-प्रदान करने को मैंने अपनी आँखें खोल दीं। वही हॉल था, और चौकोर छोटे पत्थर के स्तम्भों पर रक्खी वे ही पहले की देखी मूर्त्तियाँ! मैं कुछ संकोच में पड़ गई। मेरे सामने जो एक ओजस्विनी मूर्ति थी, वह जैसे नमित नेत्रों से लुक-छिप कर मेरी छबि का पान कर रही थी। मैं उस चोर को पकड़ कर उसे बता देती!

धीरे-धीरे इसी भाव से उसे मैं देखने लगी। उसके समग्र पौरुष को एक करुण भाव उद्दीप्त कर रहा था। मैं न जाने क्या भूल कर सोचने लगी। सहसा सुन पड़ा—

तुम कौन हो? मेरे जीवन-वृक्ष की प्रत्येक शाखा को अपने आलिंगन-पाश में लपटा लेने वाली—तुम कौन हो?

तुम कौन हो? अपनी अगणित पुष्प-मंजरियों की अपूर्व सुगन्धि से मेरे जीवन-कुञ्ज की प्रत्येक बीथी को भर देने वाली —तुम कौन हो?

तुम कौन हो? मेरे जीवन-तरु की प्रत्येक शाखा तुम्हारे चरण-तल में बरबस झुकी जा रही है—तुम कौन हो?—तुम्हारे इस कठोर बन्धन में पुलकाकुल हो मेरी प्रत्येक टहनी फटी पड़ती है!

वीणा के मधुर स्वर-से ये शब्द मेरे कानों में गूँज उठे। झन...झन...झन...मेरी प्रत्येक शिरा प्रतिध्वनि कर उठी। मैं उसी लय में डूब रही थी। कहीं कूल-किनारा नहीं। मैंने आँखें खोल दीं।

वही सामने की मूर्ति मेरे चरण-तल में अपनी प्रार्थना बिखेर

रही थ । मेरी दृष्टि पड़ते ही उसने मस्तक उठाया। ओह... वे बड़ी-बड़ी आँखें!—जैसे मेरी आरती उतार रही थीं! उस तरुण युवक की मुद्रा में एक दृढ़ आकांक्षा जैसे धनुष भंग कर खड़ी थी।

मैं झुक गई।

ओह...मेरा घुटना ही चिटख कर अलग हो गया! नींव के धसक जाने से जैसे शिखर तक काँप उठता है, वैसे ही मेरी वेदना नीचे से ऊपर तक नाच उठी। आखों के सामने अन्धकार खड़ा हो गया। मैं फिर भी टिकी रही।

मेरे समीप का फकीर चिहुँक कर दो कदम पीछे हट गया था। उसकी सुन्दरता से मुझे भय हो रहा था। किन्तु मैं... मैं अपनी दुर्बलताओं पर शासन करने के लिये वेग से यत्नशील थी। मैं सजग हो गई।अपने हृदय का सम्पूर्ण बल एकत्र कर मैंने अभिमान से सिर उठा कर देखा। मेरा प्रार्थी न जाने कहाँ जाकर विलीन होगया था। मेरा वह अतीत, छाया की भाँति, अपने ही में सिमट कर लुप्त हो चला। किन्तु; उसकी एक व्यथा अवश्य ही मेरे अभिमान में हँस रही थी।

ऊँह!......वह सब कुछ नहीं। मैं वैसी ही थी। मैं उन सभी मूर्तियों को तीव्र दृष्टि से देखने लगी। मेरी आँखें नाच रही थीं—मेरी दृष्टि उधर एक मूर्ति पर टिकी। वह जैसे कोई राजा था! बड़ी प्रभावशालिनी मुद्रा थी। भय के साथ प्रेम भी मन में उदित होता था। उसकी दृष्टि मुझे ही जैसे खोज रही थी। किन्तु मैं घबराई नहीं। मैं वैसे ही स्थिर थी। वह पागलों की भाँति डगमगाता मेरी ओर बढ़ रहा था।

कल...कल...कल... जैसे एक संगीत आवर्त्त में हो। मैं भूली हुई मींड की तरह अपना स्थान खोजने लगी। सहसा मेरे मन को जैसे किसी ने पकड़ लिया। उन हाथों की दृढ़ता मैं देख रही थी! किन्तु, वह बड़ा चंचल था। उसका लोभ मैं स्वयं न संवरण कर सकी। मैं आत्म-समर्पण के लिये प्रस्तुत थी।

वह मेरे समीप आकर बैठ गया था। मैंने देखा, वह एक तीव्र आलोक है। वह जैसे अपने व्यक्तित्व से सबको अप्रतिभ कर आगे बढ़ आया था।

मैं अपने मन का घूँघट उलट न सकी। मुझे कितनों का भय सताने लगा था। दुर्बल हृदय भारी हो चला। किन्तु मैं उसके स्वर सुनने लगी—

प्रभात ही से कलियाँ अपना मकरंद मधुपों को लुटा रही हैं। पवन सन्देश लेकर दौड़ रहा है। किन्तु, निष्ठुर! तुम्हारे संकेत की जरा सी शीतलता भी अब तक मेरे हृदय को न पहुँच सकी! न जाने कब का ज्वालामुखी धधक रहा है। मेरी पीड़ा का सुख लेने वाली! तुम दया न करोगी?

मेरे अपराध की सीमा नहीं! सचमुच, मैंने कैसी भूल की? सोचते ही मैं जैसे पानी-पानी होगई। उस अन्तस्तल ही में जाकर मैं बैठूँ। मन कचोटने लगा। मैं उसके वक्ष में आश्रय खोजने चली। वह जैसे मेरी प्रतीक्षा में था।

मैं अपनी रक्षा न कर सकी। मेरे अन्तर का वेग, इस बार भी, मेरी पत्थर की प्रतिमा चूर कर गया। सारी मूर्ति खंडित हो दूर जा पड़ी। केवल मेरा स्कंध से ऊपर का भाग शेष रहा। किसी पीड़ा और चेतना से हीन मेरा हृदय शुष्क छनक

की भाँति धूल में मिला पड़ा था। उसकी भी मूर्ति मेरे ही टुकड़ों केनीचे चूर हुई पड़ी थी। मुझे इसका क्षोभ ही क्यों होता ?

अन्धकार बढ़ रहा था। उस फकीर की दृष्टि-ज्योति की दो रेखायें उसको भेद कर मुझ तक पहुँच रही थीं। उसकी आकृति विकृत जान पड़ने लगी। मैं विद्रोह करने को तुली थी।

मेरा सब कुछ नष्ट हो चुका था। फिर भी दीपक के अन्तिम आलोक-सी मैं प्रज्वलित थी। उस अन्धकार में मेरा सौन्दर्य दप्-दप् कर रहा था। अन्तिम बूँद तक खींच लेने के लिये मैं विकल थी। मैं हँस पड़ी।

उन मूर्तियों में जैसे होड़ पड़ गई थी। एक समुदाय जैसे कोलाहल कर रहा था। मैं मौन थी। किन्तु, मेरा एक आह्वान जैसे उसे खींच रहा था। वे उत्साहित हो रहे थे।

ओह......मैं उनसे घिर पड़ी। इतने पगले! कङ्गाल!! मेरे कान के पर्दे उड़ने लगे। वे चीख रहे थे—

केवल एक चुम्बन! आह एक आलिङ्गन! धू-धू कर यह ज्वाला विकल हो रही है। सिर्फ एक बूँद! मेरे प्राण!! मेरे जीवन-धन!!!

उनकी वासना की अजगर-सी साँस मुझे निगल चली। मैं स्वयं जैसे प्यास से विकल थी। कण्ठ फटा जाता था। मैं जैसे विस्तृत मरुभूमि थी!—कण-कण से आँखें फाड़ आकाश देखती हुई! एक बूँद भी तो मिलता! आँखें चिल्ला रही थीं।

मैंने प्यासे अधर बढ़ा दिये।

ओह ! वह...चुम्बनों की वर्षा ! किन्तु हाय रे भाग्य ! मुझे वह स्पर्श भी न कर सकी ! मैं धूल में मिल गई ! सारा 'हॉल' जैसे शून्य बन गया था ! भाँय-भाँय—जैसे मेरी ही पीड़ा बज रही थी । वहाँ केवल उसी फकीर की मूर्ति की एक ज्योतिरेखा थी । किन्तु वह कितनी दूर थी ! आँखें थक जाती थीं ! मैं जैसे लौट आती थी ! वह दुर्दान्त... ... भयानक !!

मैं उस विराट् शून्य में निरवलम्ब थी । मेरी मूर्ति के उस धूलि-गर्भ में भी कैसी भयानक पीड़ा ! मन जैसे कुछ निकाल देना चाहता था ! सब असह्य था ! वेदनायें उफना रही थीं । मैं चिल्ला उठना चाहती थी । किन्तु, जैसे कण्ठ ही न खुलता था ।

उस फकीर की ज्योति-रेखा झलमला उठी । मेरा शरीर न था, फिर भी जैसे मैं काँप उठी—लहरा उठी । मैं जैसे बेहोश होने लगी ।

धप्......धप्......जैसे किसी के पैरों की चाँप हो ।

वही रेखा ! मेरी गति बन्द हो गई । फिर भी कैसी सान्त्वना ! हृदय रो देना चाहता था । आह......मेरी निरीहता ! मेरी पीड़ायें जैसे रूप धारण करने लगीं । उसी ज्योति-रेखा में सब जैसे मिलने लगीं । मैं हल्की हो रही थी ।

मैं थी ? नहीं जानती । किन्तु एक स्पर्श जैसे मुझे सहला रहा था । मैं जैसे जीने लगी । अरे, यह कैसी छाया ! किसी के जैसे छोटे-छोटे हाथ ! कैसी उलझी हुई लट ! स्मित जैसे किल-कारी मारना चाहती थी ! उसका प्यार जैसे मुझे जगा रहा था—

माँ—माँ—।

मैं जग पड़ी। ललिता मुझसे लिपट कर पुकार रही थी। उसके नथने श्वास से फूल रहे थे। वह तेजी से कह रही थी—माँ—मैं खेल आई; तुम अभी सो रही हो ?

मेरी आँखें भींग उठी थीं। वह बड़ी सरलता से कह रही थी—जागो मेरी माँ !!